तरुचिंतन

वर्ष 2009 अंक 1

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड)

"जिसको न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है"

- राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

प्रकाशित
मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग, विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
डाकघर-न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248 006
भारत

तरुचिंतन

वर्ष 2009 अंक 1

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

संरक्षक

श्री जगदीश किशवान, भा.व.से.
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

संपादक मंडल

प्रधान संपादक
डॉ. रवीन्द्र कुमार, भा.व.से., **उप महानिदेशक (विस्तार),** भा.वा.अ.शि.प.

संपादक
श्री सर्वेश सिंघल, भा.व.से., **सहा. महानिदेशक (मीडिया एवं प्रकाशन),** भा.वा.अ.शि.प.

सहायक संपादक
श्री रमाकान्त मिश्र, अनुसंधान अधिकारी (मीडिया एवं प्रकाशन), भा.वा.अ.शि.प.

प्रकाशक

मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग
विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट
देहरादून – 248 006 (उत्तराखण्ड), भारत

संरक्षक की कलम से

जगदीश किशवान
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

भारत एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न प्रकार की भाषाएं, संस्कृतियां आदि सदियों से पनपती आ रही हैं। इन भाषाओं और संस्कृतियों की महान परम्परा और अस्मिता की सुरक्षा के साथ–साथ राष्ट्रीय एवं राजनीतिक दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि देश की एक संपर्क भाषा हो। भारत में हिन्दी भाषा, संघ के सरकारी कामकाज की राजभाषा के साथ–साथ, अखिल भारतीय संपर्क भाषा भी है। संविधान की अष्टम सूची में शामिल हिन्दी सहित सभी 22 भाषाएं, हमारी राष्ट्रीय भाषाएं हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार, संघ (भारत सरकार) का कर्तव्य है कि वह राजभाषा हिन्दी का प्रचार–प्रसार बढ़ाए जिससे उसका विकास हो, और वह भारत जैसे मिश्रित संस्कृति वाले देश में अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। सरकार से यह भी अपेक्षा की गई है कि वह 8वीं अनुसूची की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए हिन्दी के शब्द भण्डार को और समृद्ध करे।

सरकार ने इस संदर्भ में राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा संकल्प 1968 और राजभाषा नियम 1976 यथासंशोधित 1987 बनाए, जिनमें राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास से संबन्धित कार्यों को करने का आदेश है। इस आदेश के कार्यान्वयन के लिए सरकार ने विभिन्न संस्थाओं की स्थापना की है, जैसे केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, राजभाषा विभाग, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान आदि और साथ में विभिन्न प्रोत्साहन योजनाओं को भी प्रारम्भ किया। संविधान की धारा 343(1) में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी जो कि संसार की सरलतम तथा सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है।

राष्ट्र में भावनात्मक एकता स्थापित करने तथा उसके उत्थान व विकास में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन्हीं विचारों को ध्यान में रखते हुए तथा हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार के उद्देश्य से भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् अपनी प्रथम हिन्दी पत्रिका ''तरुचिन्तन'' का प्रकाशन कर रही है। मुझे खुशी है कि इस शुभकार्य का प्रारम्भ मेरे कार्यकाल में हुआ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि ''तरुचिन्तन'' परिषद् व इसके संस्थानों के सभी कर्मचारियों व अधिकारियों की प्रिय पत्रिका बने।

ज० किशवान

देहरादून, 15 अगस्त 2009 (जगदीश किशवान)

प्रधान संपादक की कलम से

डॉ. रवीन्द्र कुमार
उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् भारत का एक शीर्ष वन अनुसंधान संगठन है जो कि भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अन्तर्गत एक स्वायत्त परिषद् है। अतः संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए राजभाषा हिन्दी का प्रयोग, राजभाषा अधिनियम, 1963 तथा राजभाषा नियम, 1976 के अन्तर्गत अनिवार्य हो जाता है। राजभाषा हिन्दी को प्रोत्साहन देने के लिए तथा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए परिषद् अपनी हिन्दी पत्रिका ''तरुचिन्तन'' का प्रथम प्रकाशन करने जा रहा है। इसके अन्तर्गत परिषद् में कार्य करने वाले पदाधिकारी व कर्मचारी तथा उनके परिवार के सदस्य अपने लेख तथा कविताएं प्रकाशित करा सकेगें।

''तरुचिन्तन'' पत्रिका का प्रकाशन वर्ष में एक बार किया जाएगा तथा इसमें प्रकाशन हेतु सामग्री लेखकों द्वारा कभी भी प्रेषित की जा सकती है। जहाँ तक विषय का प्रश्न है, यह पत्रिका प्रत्येक क्षेत्र के लेख का स्वागत करती है। इसमें विज्ञान, साहित्य, कला व लोक संस्कृति से संबंधित या किसी भी अन्य क्षेत्र से संबंधित लेखों का प्रकाशन किया जाएगा। साथ ही साथ कवियों को भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए पत्रिका में उचित स्थान दिया जाएगा। जीवन का एक पहलू हंसने–हंसाने का भी है इसलिए पत्रिका में हास्य व्यंग्य पर आधारित लेख, कविताएं तथा चुटकुलों को भी संकलित कर प्रकाशित किया जाएगा।

इस पत्रिका के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देना तथा इस भाषा का समुचित विस्तार करना है। अतः परिषद् की प्रथम पत्रिका ''तरुचिन्तन'' का प्रकाशन करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

(डॉ. रवीन्द्र कुमार)

संपादक की कलम से

श्री सर्वेश सिंघल
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं प्रकाशन)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

भारत एक बहुभाषी देश है। अलग–अलग राज्यों की भाषा, वहां की बोलचाल, खानपान, रहन–सहन, वेश–भूषा स्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न हैं और इन परिस्थितियों में भारतवर्ष में, सैकड़ों वर्षों से हिन्दी देश के विभिन्न भागों में सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग में लाई जाती रही है।

राजभाषा और राष्ट्रभाषा की अवधारणाएं अलग–अलग हैं। राजभाषा से आशय सरकारी कामकाज की भाषा से है। परन्तु किसी देश के विभिन्न क्षेत्र के लोग सम्पर्क में आने पर अपने विचारों का आदान–प्रदान जिस भाषा के माध्यम से करते हैं, उसे ही देश की राष्ट्रभाषा अथवा सम्पर्क भाषा कहते हैं।

भारतवर्ष में हिन्दी भाषा न केवल संघ के सरकारी कामकाज की राजभाषा है वरन् अखिल भारतीय संपर्क भाषा भी है क्योंकि यह भारतवर्ष की सबसे ज्यादा बोली तथा समझे जाने वाली भाषा है। राष्ट्र में भावनात्मक एकता स्थापित करने तथा उसके उत्थान व विकास में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भावनात्मक एकता तभी संभव है, जब पूरे राष्ट्र में भावों के आदान–प्रदान में कोई कठिनाई न हो और विचारों के आदान–प्रदान का कोई एक माध्यम हो। यह कार्य केवल हिन्दी भाषा ही कर सकती है इसलिए हम अपनी भावात्मक एकता का कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से कर सकते हैं।

अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी राजभाषा का विकास करें, प्रचार प्रसार करें तथा अधिक से अधिक दैनिक जीवन में उपयोग करें। इन्हीं विचारों को ध्यान में रखते हुए परिषद् की वार्षिक पत्रिका "तरुचिन्तन" का प्रकाशन संभव हो सका है और आशा करते हैं कि इसमें परिषद् के पदाधिकारीगण, कर्मचारीगण तथा उनके परिवार के सदस्य लेख लिखकर प्रकाशन कराने में रूचि लेंगे जिससे हिन्दी के विकास में निरन्तर प्रगति होने की पूर्ण संभावना है।

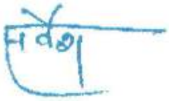

(सर्वेश सिंघल)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संरक्षक की कलम से		i
	प्रधान संपादक की कलम से		iii
	संपादक की कलम से		v

राजभाषा

1.	संसदीय राजभाषा समिति की निरीक्षण प्रश्नावली भरते समय ध्यान देने योग्य बातें	कैलाश चन्द गुप्ता	1–2
2.	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलौर में भारत संघ की राजभाषा के प्रगामी प्रयोग की स्थिति एवं वन अनुसंधान केन्द्र, हैदराबाद में हिन्दी दिवस का सचित्र विवरण	डॉ. एस. के. शर्मा एवं एस. सी जोशी	3–4
3.	शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में आयोजित हिन्दी गतिविधियाँ	श्रीमती संगीता त्रिपाठी	5–6
4.	उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 09 से 15 सितम्बर 2008 के दौरान आयोजित हिन्दी सप्ताह की रिपोर्ट	डॉ. ए. के. मण्डल	7–8

वानिकी

5.	कृषि वानिकी का जलवायु परिवर्तन में महत्व	डॉ. अविनाश जैन एवं डॉ. ए. के. मण्डल	11–13
6.	दीमक : एक परिचय	डॉ. आर. के. ठाकुर	14–21
7.	पौधशालाओं में नाशीजीव का प्रबंधन	आर. एस. भण्डारी	22–25
8.	औषधीय पौधों का विनाश विहीन विदोहन	अशोक कुमार पाण्डेय एवं असीम कुमार मण्डल	26–29
9.	खनन क्षेत्रों में झाड़ियों की उपयोगिता	डॉ. ओम कुमार एवं हर्षवर्द्धन वशिष्ठ	30–32

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
10.	वानिकी अनुसंधान में सांख्यिकी : विकास, योगदान व महत्व	अनूप चौहान	33–35
11.	राजस्थान के महत्वपूर्ण अकाष्ठ वनोपज एवं ग्रामीण जीवन में उनकी महत्ता'	श्रीमती संगीता त्रिपाठी, डॉ. रंजना आर्या एवं राजेश गुप्ता	36–43
12.	जैव उर्वरक "वैम" की उपयोगिता एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण	डॉ. नीलम वर्मा एवं डॉ के. के. श्रीवास्तव	44–46
13.	लेन्टाना कमारा : जैवविविधता के लिए एक खतरा	डॉ. आर. एस. रावत	47–49
14.	पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि वानिकी : आवश्यकता एवं लाभ	डॉ. चरन सिंह, पी.के. गुप्ता एवं अजय गुलाटी	50–52
15.	बबूल का पेड़ और किसान समृद्धि	श्रीमती संगीता त्रिपाठी	53–54
16.	दीमकों के बारे में अल्प ज्ञात तथ्य	विवेक त्यागी एवं सचिन कुमार,	55–56

विविधा

17.	मोरों की स्वर्ग स्थली : आफरी परिसर (हमारे राष्ट्रीय पक्षी पर एक नजर)	श्रीमती संगीता त्रिपाठी एवं राजेश कुमार	59–61
18.	प्राकृतिक रंगो का रहस्य	अनुभा श्रीवास्तव एवं ए. के. पांडे	62–64
19.	पुस्तकालय संसाधनों का डिजिटल वातावरण में बचाव	अनुराधा भाटी	65–68
20.	भारत का राष्ट्रीय वृक्ष : वट	अमीन उल्लाह खान	69–70
21.	मीठी जड़ी बूटी : स्टीविया	डॉ. नवीन कुमार बोहरा	71–72
22.	स्तनधारियों का साम्राज्य	के.पी. सिंह	73
23.	जंक फूड और बिगड़ता स्वास्थ्य	श्रीमती सीमा ठाकुर	74–75
24.	आज के संस्कारहीन होते बच्चे : जिम्मेदार कौन ?	श्रीमती गीता वोहरा	76
25.	बढ़ती जनसंख्या राष्ट्र के विकास में बाधक	श्री विजय धवन एवं श्रीमती अर्चना धवन	77–78

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
26.	आँवलों के बगीचे में सामयिक कार्य	डॉ. नीलम वर्मा, श्रीमती संगीता त्रिपाठी एवं डॉ. संगीता सिंह	79–81
27.	छतीसगढ़ राज्य में वन्य बेल की उपलब्धता फलन एवं प्रसंस्करण	डॉ संगीता सिंह	82–83

लालित्य

28.	मौसम और मैं	डॉ. रवीन्द्र कुमार	87
29.	जीवन	डॉ. रवीन्द्र कुमार	88
30.	मै हूँ पर्यावरण	सर्वेश सिंघल	89
31.	पहाड़ की बेटी	रमाकान्त मिश्र एवं श्रीमती रेखा मिश्र	90–96
32.	वृक्ष वंदना	एस. एल. मीणा	97
33.	हम चूक गये हम चूके क्यों	विनीता श्रीवास्तव	98
34.	हिमवन्त देश	श्रीमती विजय धस्माना	99
35.	प्रकृति की सीख	छत्रपाल सिंह सैनी	100
36.	बेवकूफ दिमाग क्यों चाटता है	रमाकान्त मिश्र	101–104
37.	चल खुसरो घर आपने	महेन्द्र शर्मा	105–107
38.	रंग बिरंगी धरती	डॉ उत्तर कुमार तोमर	108
39.	ऑक की कहानीः अपनी जुबानी	अनिल शर्मा	109

राजभाषा

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को शूल

संसदीय राजभाषा समिति की निरीक्षण प्रश्नावली भरते समय ध्यान देने योग्य बातें

कैलाश चन्द गुप्ता
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

माननीय संसदीय राजभाषा समिति कार्यालयों में राजभाषा हिन्दी की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए समय–समय पर निरीक्षण करती है या साक्ष्य लेती है तत्पश्चात् रिपोर्ट सीधे महामहिम राष्ट्रपति जी की सेवा में प्रस्तुत करती है अतः यह एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति है। उक्त समिति को अपूर्ण प्रश्नावली प्रस्तुत करना माननीय समिति की मर्यादा के प्रतिकूल होता है। तथा अशुद्ध रूप से भरना, असत्य सूचना देना माना जाता है। प्रश्नावली में दिए हुए आंकड़े, तथ्य और कथन, प्रश्नावली भरने वाले कार्यालय की ओर से आश्वासन हो जाते हैं जिसकी पूर्ति करना उसका दायित्व हो जाता है माननीय संसदीय राजभाषा समिति की जो प्रश्नावली है, वह बड़ी व्यापक, बहुआयामी और अन्योन्याश्रित है तथा उसके एक प्रश्न का संबंध उसके कई उप प्रश्नों से जुड़ा होता है अतः पूर्ण सावधानी से प्रश्नावली को भरा जाना नितांत आवश्यक है। प्रश्नावली को सही और ठीक–ठीक भरना दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक तो माननीय संसदीय राजभाषा समिति को तथ्यपरक सूचना देने और दूसरे ठीक–ठीक आश्वासन देने की दृष्टि से। अन्यथा प्रश्नावली को दुबारा भरने के आदेश भी दिए जा सकते है। इस अप्रिय एवं क्षोभक स्थिति से बचने के लिए कारगर एवं प्रभावी उपाय है कि कार्यालयों में राजभाषा नियमों के क्रियान्वयन एवं निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु जाँच बिन्दु तय कर लिए जायें तथा समय–समय पर उनकी समीक्षा भी की जाए।

प्रश्नावली भरे जाने के दौरान यह समुचित ध्यान रखा जाए कि :

(1) पूछे जाने वाले प्रश्न के जवाब में केवल डेश (–) लगाकर न छोड़ा जाए।

(2) दी जा रही सूचना मात्रात्मक अथवा संख्यात्मक हो गुणात्मक नहीं।

(3) प्रश्नावली में सही, शुद्ध एवं पूर्ण सूचना ही दी जाए।

(4) प्रश्नावली भरे जाने से पूर्व उसकी छाया प्रति लेकर उसमें पेंसिल से भरें तथा आश्वस्त होने पर मूल प्रश्नावली को भरा जाए/टंकित कराया जाए।

(5) यदि किसी कार्यालय का निरीक्षण उपसमिति द्वारा पहले किया जा चुका है तो उस निरीक्षण से संबन्धित लंबित/अपूर्ण आश्वासनों को पुनः निरीक्षण के दौरान उप समिति को दिए गए आश्वासनों में शामिल कर लेना चाहिए।

(6) अगर किसी आश्वासन को पूरा करने के लिए समय का निर्धारण नहीं किया जाता है तो वह 6 महीने में पूरा करना होगा।

(7) अगर आश्वासन पूरा करने हेतु समय सीमा बढ़ाने का अनुरोध किया जाता है तो आश्वासन को पूरा न कर सकने का स्पष्ट कारण बताते हुए समय बढ़ाने के लिए निर्धारित प्रपत्र में अनुरोध करना चाहिए। आश्वासनों को पूरा करने की समय अवधि को 6–6 मास की दो किस्तों में बढ़ाया जा सकता है।

(8) आश्वासनों पर की गई अनुवर्ती कार्रवाई रिपोर्ट भेजने अथवा आश्वासन को पूरा करने हेतु समय सीमा बढ़ाने हेतु अनुरोध करने के लिए कार्यालयों द्वारा समिति को सीधे न भेजकर संबन्धित मंत्रालयों/विभागों के माध्यम से समिति सचिवालय को भेजा जाना चाहिए।

(9) समिति/उपसमिति को प्रस्तुत की जाने वाली सभी प्रश्नावलियों और अन्य कागज–पत्रों के बारे में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वे:

(क) हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हों।

(ख) टाइप किए हुए हों अथवा एक प्रति टाइप कराने के बाद फोटोस्टेट हो।

(ग) समिति द्वारा प्रेषित प्रश्नावली के अनुरूप हो।

(घ) संबन्धित विभाग/कार्यालय/संगठन/उपक्रम के प्रशासनिक अध्यक्ष द्वारा अधिप्रमाणित हो।

समिति/उपसमिति के निरीक्षण के दौरान यह भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है किः

(1) जिस कार्यालय का निरीक्षण किया जाना हो वह राजभाषा संबन्धित सभी सामग्री एवं सांख्यिकीय सूचनाएं आदि विचार–विमर्श हेतु तैयार रखे। हिन्दी के प्रगामी प्रयोग संबन्धी आदेशों, त्रैमासिक प्रगति रिपोर्ट, राजभाषा कार्यान्वयन समिति के गठन एवं बैठकों संबन्धी फाइल तथा कर्मचारियों को हिन्दी के सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु भेजने के लिए रजिस्टर आदि निरीक्षण हेतु उपलब्ध कराए।

(2) निरीक्षण हेतु राजभाषा नियमों में विनिर्दिष्ट द्विभाषी सामग्री संबन्धी एक ऐसी फाइल अथवा रजिस्टर रखे जाएं जिसमें कार्यालय प्रयोग के सभी मानक फार्मों/प्रपत्रों की द्विभाषी प्रति मौजूद हों तथा द्विभाषी मोहरों की छाप अंकित हों, द्विभाषी बोर्डो, द्विभाषी नाम पट्टिकाओं आदि की जानकारी हेतु विवरण संलग्न हों।

(3) प्रश्नावली की मदों पर गंभीरता से विचार हो तथा संबंधित अधिकारी उन पर अपने जवाब के समर्थन में पूर्ण दस्तावेज उपलब्ध रखें तथा प्रश्नावली में भरे जा रहे जवाब के प्रति पूर्ण आश्वस्त हो लें। प्रश्नावली को विनम्र एवं सटीक ढ़ंग से भरा जाना चाहिए तथा जहाँ आवश्यक हो जवाब के समर्थन में दस्तावेज की प्रति संलग्न की जाए।

(4) बैठक की तैयारी कार्यालय/विभाग /मंत्रालय स्तरों पर आपसी समन्वय तथा संपर्क माध्यम से हो ताकि किसी भी तरह की अव्यवस्था से बचा जा सके।

(5) बैठक कक्ष में सहज दृष्टव्य स्थान पर अपने कार्यालय/संगठन में हो रहे हिन्दी के विशेष कार्यों, उपलब्धियों तथा शंसा पत्रों का प्रदर्शन हो तथा इनका अवलोकन किए जाने का माननीय समिति से बैठक में निवेदन किया जाए। जहाँ सुविधाजनक हो उक्ताशय की हिन्दी प्रचार–प्रसार की गतिविधियों/कार्यक्रमों प्रोजेक्टर जैसे साधनों के माध्यम से बैठक में प्रदर्शित किया जाए।

(10) निरीक्षण के दौरान यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि निम्नलिखित बातों से समिति/उपसमिति की मर्यादा भंग होती है और उसका अपमान होता हैः

(क) उत्तर देने से इंकार करना।

(ख) असल बात का घुमा–फिराकर कहना, झूठी गवाही देना, गलत दस्तावेज प्रस्तुत करना, सत्य को छिपाना अथवा समिति/उपसमिति को गुमराह करना।

(ग) समिति/उपसमिति की अवमानना करना या अपमानजनक उत्तर देना।

(घ) समिति/उपसमिति द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर सक्षम प्राधिकारी की उपस्थिति में अन्य अधिकारी द्वारा दिया जाना।

उपर्युक्त बातों का ध्यान रखे जाने से सीधा लाभ यह होगा कि प्रश्नावली सही–सही भरी जा सकेगी जससे निरीक्षण अथवा साक्ष्य के समय अनावश्यक रूप से झेंपना नहीं पड़ेगा और कार्यान्वयन ठीक प्रकार से होगा।

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलौर में भारत संघ की राजभाषा के प्रगामी प्रयोग की स्थिति

डॉ. एस. के. शर्मा एवं एस. सी जोशी
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलौर

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलौर जो राजभाषा विभाग के अनुसार, ग क्षेत्र में स्थित है में भारत संघ की राजभाषा नीति का अनुपालन हर संभव सुनिश्चित करने की दृष्टि से 1995 में हिन्दी अनुवादक एवं हिन्दी टंकण की नियुक्ति होने के तुरन्त पश्चात एक वरिष्ठ वैज्ञानिक को राजभाषा अधिकारी के रूप में मनोनीत किया गया है, उनकी देख–रेख में हिन्दी कक्ष स्थापित कर भारत सरकार के निदेशानुसार, इस संस्थान में निदेशक महोदय की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति का गठन किया गया है जिसका अपेक्षानुसार समय–समय पर पुनःर्गठन किया जाता है।

समिति की नियमित रूप से बैठकें आयोजित कर संस्थान के सरकारी काम–काज में हो रहे राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की समीक्षा की जाती है और बैठक में समिति सदस्यों के विचार–विमर्श के उपरान्त सरकारी काम–काज में राजभाषा हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग बढ़ाने की दिशा में निदेशक व समिति अध्यक्ष महोदय द्वारा सभी संबंधितों को आग्रह किया गया है।

संस्थान में हिन्दी का प्रयोग अधिकाधिक बढ़ाने तथा समय–समय पर अंग्रेजी सामग्री का हिन्दी में अनुवाद करवाने के लिए राजभाषा अधिकारी एवं उनके अधीनस्थ पदाधिकारियों की सेवाएं ली जाती है जिसमें कि राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) के तहत समय–समय पर जारी किये जानेवाले अंग्रेजी दस्तावेजों का हिन्दी रूपान्तरण करना आदि शामिल है। इसके अतिरिक्त इन पदाधिकारियों से भारत सरकार द्वारा 'ग' क्षेत्र के लिए निर्धारित किये लक्ष्य को हर संभव हासिल करने की दिशा में सक्रिय सहायता ली जाती है। संस्थान में निदेशक महोदय की अध्यक्षता में समय–समय पर आयोजित शीर्षस्थ प्रशासनिक बैठकों एवं कार्यक्रमों में अधिकतर विचार–विमर्श एवं भाषण आदि हिन्दी में ही दिये जाते हैं। संस्थान में राजभाषा हिन्दी का उत्साहवर्धक वातावरण सृजित करने की दृष्टि से समय–समय पर पदाधिकारियों के लिए राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम तथा हिन्दी कार्यशाला का आयोजन भी किया जाता है।

संस्थान में प्रति वर्ष 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस समारोह मनाया जाता है और इस दौरान निदेशक महोदय माननीय गृह मंत्री भारत सरकार द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित जारी संदेश को मंच के माध्यम से संस्थान के सभी पदाधिकारियों को अवगत कराते हैं तथा 14 सितम्बर से 28 सितम्बर तक बड़े उत्साह के साथ हिन्दी पखवाड़ा मनाया जाता है। इस दौरान हिन्दी की विविध प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती है और प्रतियोगिताओं में पदाधिकारियों को हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह के दौरान आमंत्रित मुख्य अतिथि के करकमलों से पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं।

प्रति वर्ष की तरह वर्ष 2008 के सितम्बर माह के दौरान भी संस्थान में श्रीयुत एस.सी. जोशी, निदेशक महोदय की अध्यक्षता में बड़े हर्षोल्लास से हिन्दी पखवाड़ा समारोह का आयोजन किया गया और इस दौरान विविध प्रतियोगिताएँ आयोजित की गई तथा हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह में सादर आमंत्रित मुख्य–अतिथि महोदय श्रीयुत बी.के. सिंह, अपर प्रधान मुख्य वन– संरक्षक, कर्नाटक वन विभाग, बेंगलौर के करकमलों से सफल प्रतियोगियों को पुरस्कार प्रदान किया गया।

संस्थान में हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार द्वारा जारी की गई विविध प्रोत्साहन नकद पुरस्कार की सभी योजनाएँ लागू की जा चुकी हैं जिसके तहत

सरकारी काम–काज जो कि टिप्पण एवं आलेखन कार्य में वर्ष में कम से कम दस हजार शब्द मूल हिन्दी में लिखने पर अर्ह–पदाधिकारियों को प्रोत्साहन नकद पुरस्कार एवं हिन्दी भाषा, टंकण एवं आशुलिपि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने वाले अर्ह पदाधिकारी वर्ग को प्रोत्साहन नकद पुरस्कार एवं वेतन–वृद्धि का लाभ प्रदान करते हुए उन्हें अपने संबंधित कार्यालयीन काम–काज में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयास जारी रखने हेतु निदेशक महोदय एवं हिन्दी कक्ष के पदाधिकारियों द्वारा आग्रह किया जाता है।

इस संस्थान में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग भारत सरकार के निर्धारित लक्ष्य के अनुसार किया जा रहा है जिसकी नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बेंगलौर द्वारा सराहना करते हुए संस्थान को हिन्दी में किये गये सराहनीय कार्य के आधार पर तृतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया जिसे संस्थान की ओर से डॉ. एस.के. शर्मा, वैज्ञानिक–एफ एवं राजभाषा अधिकारी ने प्राप्त किया।

वन अनुसंधान केन्द्र, हैदराबाद

वन अनुसंधान केन्द्र, हैदराबाद में हिन्दी दिवस 22 दिसम्बर 2008 को मनाया गया। इसमें हिन्दी के विकास तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया गया। इस दिन गायन (हिन्दी) और भाषण (हिन्दी) प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया और प्रथम, द्वितीय और तृतीय आने वाले कर्मचारियों को पारितोषिक देकर सम्मानित किया गया। जो कर्मचारी हिन्दी का प्रयोग सरकारी कामकाज में करते हैं उनको भी पारितोषिक देकर सम्मानित किया गया।

गायन (हिन्दी) पुरस्कार सूची

प्रथम – श्री नरसिम्हया
द्वितीय – श्री ओ.वी.स.न. प्रसाद
तृतीय – श्री सेंथिल कुमार

भाषण (हिन्दी) पुरस्कार सूची

प्रथम – श्री नरसिम्हया
द्वितीय – श्री मुरलीकृष्ण
तृतीय – श्री सेंथिल कुमार एवं श्री वेंकटरमणन

हिन्दी प्रोत्हसान पुरस्कार सूची

प्रथम – श्री मुरलीकृष्ण
द्वितीय – श्री ओ.वी.स.न. प्रसाद
तृतीय – श्री नरसिम्हया
चतुर्थ – श्रीमती शहेल्लमा

जब से गुनाह छोड़ दिए, सब खिसक गए
अब कोई मेरा दोस्त नहीं, हमनशीं नहीं।

–'अकबर' इलाहाबादी

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में आयोजित हिन्दी गतिविधियाँ

श्रीमती संगीता त्रिपाठी
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

"हिंदी सप्ताह" का आयोजन

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में दिनांक 08–14 सितम्बर 2008 तक "हिंदी सप्ताह" का आयोजन किया गया। इस अवसर पर टिप्पण तथा प्रारूपण, श्रुतलेख (वर्ग 'घ' के लिए), कम्प्यूटर पर हिंदी टंकण, निबंध लेखन एवं स्वरचित काव्यपाठ प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं।

मुख्य अतिथि श्री रेवती लाल मीणा, सचिव नराकास एवं वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी, उत्तर पश्चिम रेलवे, जोधपुर 'हिंदी दिवस' पर उद्‌बोधन प्रस्तुत करते हुए

हिंदी श्रुतलेख प्रतियोगिता में श्री कैलाश शर्मा, श्रीमती पुष्पा राठौड़, श्री लादू राम मेहरा, श्री कान सिंह राठौड़, हिंदी स्वरचित काव्य पाठ में श्री अनिल शर्मा, कु. विनीता श्रीवास्तव, डॉ. यू.के. तोमर, डॉ. एन. के. बोहरा, हिंदी निबंध प्रतियोगिता में डॉ. एन. के. बोहरा, श्रीमती कुसुम परिहार, श्री अमीन उल्लाह खान, श्री महेंद्र सिंह, हिंदी टिप्पण व आलेखन प्रतियोगिता में श्री हेमंत कुमार गागल, श्री एन. के. श्रंगी, श्री के. एस.परमार, श्रीमती रेखा दाधीच कम्प्यूटर पर हिंदी टंकण में श्री एन. के. सारडा, श्रीमती रेखा दाधीच, श्री देवेन्द्र सिंह सिसोदिय एवं श्री लक्ष्मण सिंह राठौड़ ने क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं सांत्वना पुरस्कार प्राप्त किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री रेवती लाल मीणा, सचिव नराकास एवं वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी, उत्तर पश्चिम रेलवे, जोधपुर एवं विशिष्ट अतिथि श्री श्रवण कुमार मीणा, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर थे।

कार्यक्रम का संचालन श्रीमती संगीता त्रिपाठी ने किया।

"सतर्कता जागरूकता सप्ताह"

दिनांक 03–10 नवम्बर 2008 तक संस्थान में "सतर्कता जागरूकता सप्ताह" आयोजित किया गया। इसका शुभारंभ दिनांक 3 नवम्बर 2008 को पूर्वाह्न 11.00 बजे डॉ. आर. एल. श्रीवास्तव, निदेशक, आफरी द्वारा संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को "सतर्कता जागरूकता प्रतिज्ञा" दिलवा कर किया गया।

'सतर्कता जागरूकता सप्ताह" के अंतर्गत दिनांक 04 नवम्बर 2008 को प्रातः 11.00 बजे "सतर्कता जागरूकता" विषय पर "नारा लेखन" प्रतियोगिता तथा दिनांक 06 नवम्बर 2008 को प्रातः 11.00 बजे शोध क्षेत्र में सूचना के अधिकार तथा पारदर्शिता की प्रासंगिकता/उपादेयता' विषय पर निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई। दिनांक 10 नवम्बर 08 को समापन समारोह संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक श्री सी. जे. एस.के. इमैनुअल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर उक्त प्रतियोगिताओं के विजेता प्रतिभागियों को श्री सी. जे. एस.के. इमैनुअल, वैज्ञानिक–एफ द्वारा क्रमशः रुपये 500/–, 300/–, 200/– व 100/– के प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं सांत्वना पुरस्कार प्रदान किए गए। श्री सी. जे. एस. के. इमैनुअल, वैज्ञानिक–एफ ने संस्थान कर्मियों से ईमानदारी एवं पारदर्शिता बनाए रखने, अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत रहने तथा बिना पक्षपात के कार्य करने का अनुरोध किया। कार्यक्रम का संचालन श्रीमती संगीता त्रिपाठी ने किया।

हिंदी कार्यशाला का आयोजन

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान (आफरी), जोधपुर में दिनांक 23 और 24 मार्च 2009 को "दो दिवसीय हिंदी कार्यशाला" का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में शुष्क वन अनुसंधान संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों सहित जोधपुर के विभिन्न संगठनों से पधारे अधिकारियों एवं कर्मचारियों नें भी भाग लिया। कार्यशाला में चर्चा के मुख्य बिन्दु हैं:

(1) हिंदी में प्राप्त होने वाले पत्रों का उत्तर आवश्यक रूप से हिंदी में ही दिया जाय।

(2) सभी रबर की मोहरों को द्विभाषी रूप में उपलब्ध करवाया जाय।

(3) राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) का पालन सुनिश्चित किया जाय।

(4) संचिकाओं पर लिखी जाने वाली टिप्पणियों को यथा संभव हिंदी में लिखने का प्रयास किया जाय।

कार्यशाला के उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि श्री रेवती लाल मीणा, सचिव नराकास एवं वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी, उत्तर पश्चिम रेलवे, जोधपुर थे तथा इसकी अध्यक्षता डॉ. आर.एल. श्रीवास्तव, भा.व.से., निदेशक, आफरी द्वारा की गई। सर्वप्रथम श्रीमती संगीता त्रिपाठी, अनु. अधि./हिंदी अधिकारी द्वारा कार्यशाला के उद्घाटन सत्र में भाग लेने वाले सभी अधिकारियों, कर्मचारियों, गणमान्य व्यक्तियों एवं मीडिया कर्मियों का स्वागत किया गया। संस्थान के समूह समन्वयक (शोध) श्री अशोक कुमार, भा.व.से., ने कहा कि हिंदी एक वैज्ञानिक भाषा है एवं इसके प्रत्येक उच्चारण का एक वैज्ञानिक आधार है। कार्यशाला के विशिष्ट अतिथि, डी. एम. आर. सी., जोधपुर के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं राजभाषा प्रभारी डॉ. ए. के. दीक्षित ने हिंदी को बढ़ावा देने के लिए कार्यशालाओं के आयोजन एवं विभिन्न प्रोत्साहन योजनाओं को बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री रेवती लाल मीणा, सचिव नराकास एवं वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी, उत्तर पश्चिम रेलवे, जोधपुर ने कहा कि जो देश अथवा समुदाय जितना विकसित होता है, उसकी भाषा भी उतनी ही विकसित होती है। यद्यपि यह आवश्यक है कि हम देश में बोली जाने वाली प्रत्येक भाषा का आदर करें किन्तु, फिर भी, हमें अपने देश की राजभाषा को अपनी मातृ भाषा की भांति ही आदर एवं सम्मान प्रदान करना चाहिए क्योंकि राजभाषा पूरे देश की भाषा होती है जिसे देश के अधिकतर लोग जानते एवं समझते हैं। आज हिंदी विश्व के अधिकतर देशों में बोली एवं समझी जाती है तथा कई देशों के 110 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई भी जा रही है। राजभाषा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करवाने के प्रयास निरंतर जारी हैं।

अपने अध्यक्षीय उद्‌ब्रोधन में संस्थान निदेशक डॉ. आर.एल. श्रीवास्तव, भा.व.से. ने कहा कि इस तरह की कार्यशालाओं का होना एक अच्छी प्रक्रिया है किन्तु यह औपचारिकता मात्र न रह जाय इस बात का ध्यान रखा जाना भी आवश्यक है। हमें पत्राचार के साथ–साथ संचिकाओं पर टिप्पणी भी हिंदी में लिखनी चाहिए। उन्होंने संस्थान के वैज्ञानिकों से कहा कि हमारा प्रयास सदैव यह रहना चाहिए कि हम अपनी अनुसंधान संबंधी नवीनतम गतिविधियों से किसानों एवं ग्रामीणों को अवगत करायें ताकि हमारी समस्त अनुसंधान उपलब्धियों से ग्रामीण समुदाय को लाभान्वित किया जा सके। इसके लिए संस्थान द्वारा त्रैमासिक पत्रिका "आफरी दर्पण" का प्रकाशन किया जा रहा है। इस कार्यशाला में जोधपुर स्थित केन्द्रीय सरकार के विभिन्न कार्यालयों से 160 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

संस्थान निदेशक डॉ. आर. एल. श्रीवास्तव, हिंदी कार्यशाला में अध्यक्षीय उद्‌बोधन प्रस्तुत करते हुए

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 09 से 15 सितम्बर 2008 के दौरान आयोजित हिन्दी सप्ताह की रिपोर्ट

डॉ. ए. के. मण्डल
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के जारी निर्देशों की अनुपालना में संस्थान में हिन्दी में कार्य को माहौल तैयार करने तथा हिन्दी में कार्य को प्रोत्साहित करने हेतु पूर्व की भाँति इस बार भी संस्थान में दिनांक 09 से 15 सितम्बर 2008 के दौरान हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया। सप्ताह के दौरान कई हिन्दी प्रतियोगिताएं आयोजित हुई जिनमें हिन्दी प्रश्नोत्तरी, प्रशासनिक शब्दावली एवं टिप्पणी, प्रशासनिक हिन्दी भाषा ज्ञान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का हिन्दी ज्ञान, हिन्दी टंकण (कम्प्यूटर पर), हिन्दी भाषण (विषय : वैज्ञानिक अनुवाद की भाषा कैसी हो ?), हिन्दी निबंध (भविष्य की हिन्दी और हिन्दी का भविष्य) हिन्दी आशुलिपि, हिन्दी व्यवहार, हिन्दी में मौलिक तकनीकी लेख तथा स्वरचित काव्यपाठ प्रतियोगिताएं सम्मिलित रहीं।

हिन्दी सप्ताह की शुरूआत दिनांक 09 सितम्बर 2008 को हिन्दी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता से हुई जिसमें पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के उपनिदेशक (राजभाषा) श्री बाबूलाल उपस्थित रहे। कार्यक्रम के दौरान संस्थान में एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला भी आयोजित की गई। कार्यशाला के व्याख्यानदाता श्री बाबूलाल, उपनिदेशक (राजभाषा) ने नीतिनियमों तथा कार्यान्वयन की कठिनाईयों तथा उनके समाधान पर अपना व्याख्यान दिया।

15 सितम्बर 2008 को रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर त्रिभुवननाथ शुक्ल के आतिथ्य में काव्यपाठ के साथ हिन्दी सप्ताह का समापन समारोह आयोजित हुआ। संस्थान के हिन्दी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने संस्थान की हिन्दी प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तथा हिन्दी का महत्व बताते हुए कहा कि दुनिया की नजर हिन्दी पर टिकी हुई है। संस्थान निदेशक, डॉ. असीम कुमार मण्डल ने संस्थान की हिन्दी प्रगति पर संतोष जताया तथा शोध की जानकारी हिन्दी में देने हेतु वैज्ञानिकों तथा शोधकर्ताओं का आह्वान किया। इसी अवसर पर निदेशक की ओर से हिन्दी में कार्य को बढ़ावा दिए जाने के आशय की अपील भी जारी की गई। अतिथि प्रोफेसर शुक्ल ने कार्यक्रम की सराहना करते हुए कहा कि शोध संस्थान में हिन्दी को साथ लेकर चलना बड़ी बात है। उन्होंने कहा कि विचार–मंथन के लिए जरूरी है कि व्यक्ति नियमित अध्ययनशील रहे।

समारोह में हिन्दी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार एवं प्रमाण–प्रत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया साथ ही हिन्दी में कार्य करने हेतु प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत वर्ष 2007–2008 के हिन्दी कार्य हेतु 10 कर्मचारियों को नियमानुसार नकद राशि के पुरस्कार एवं प्रमाण–प्रत्र प्रदान किए गए।

श्री एन.टी. शेर्पा, नियंत्रक एवं राजभाषा अधिकारी (नामित) द्वारा आभार व्यक्त किया गया।

टी.एफ.आर.आई., जबलपुर में संसदीय राजभाषा समिति का निरीक्षण दिनांक 22 सितम्बर 2008

माननीय संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उपसमिति की दिनांक 22 सितम्बर को उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की निरीक्षण बैठक आयोजित हुई जिसमें संस्थान के हिन्दी कार्यों तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रचार – प्रसार की प्रगति की समीक्षा की गई तथा समिति द्वारा आवश्यक निर्देश दिए गए। इस उच्चस्तरीय निरीक्षण बैठक में भा.वा.अ.शि.प.

देहरादून से श्री एम.एस गर्ब्याल, उपमहानिदेशक (प्रशासन), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली से श्री सुरेश प्रसाद चौबे, निदेशक (राजभाषा) बतौर प्रतिनिधि उपस्थित रहे तथा संस्थान के निदेशक, डॉ. असीम कुमार मण्डल, नियंत्रक श्री एन.टी. शेर्पा एवं हिन्दी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने बैठक में भाग लिया।

ये जो शहतीर है पलकों पे उठा लो यारो
अब कोई ऐसा तरीका भी निकालो यारो।

दर्दे दिल वक्त को पैगाम भी पहुँचाएगा
इस कबूतर को जरा प्यार से पालो यारो।

लोग हाथों में लिए बैठे हैं अपने पिंजरे
आज सय्याद को महफिल में बुला लो यारो।

रहनुमाओं की अदाओं पे फिदा है दुनिया
इस बहकती हुई दुनिया को संभालो यारो।

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

–दुष्यन्त कुमार

वानिकी

एक वृक्ष दस पुत्र समान

कृषि वानिकी का जलवायु परिवर्तन में महत्व

अविनाश जैन एवं डॉ ए. के. मण्डल
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

सभ्यता के कृत्रिम विकास के विभिन्न सोपानों में जलवायु को ही सर्वशक्तिमान एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। लेकिन आज सभी जलवायु परिवर्तन की समस्या से जूझ रहे हैं। यह एक निर्विवाद विषय है कि औद्योगिक प्रसार के कारण पृथ्वी पर ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जिससे आज पूरे विश्व में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को देखा जा सकता है। कार्बन डाई ऑक्साइड जलवायु को प्रभावित करने वाली सबसे अधिक प्रभावशाली गैस है इस परिवर्तन में मानव जनित गतिविधियां मुख्य भूमिका निभा रही हैं। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व कार्बन डाई ऑक्साइड का स्तर 280 भाग प्रति दस लाख (पी.पी.एम.) था जो आज 350 भाग प्रति दस लाख के स्तर पर पहुंच गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार पिछले 58 सालों में वातावरण का औसत तापमान 0.76 डिग्री सेल्सियस बढ़ गया है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि अगर इसी दर से जलवायु में परिवर्तन होता रहा तो 21वीं सदी के अंत तक वातावरण का तापमान 1.8 से 4 डिग्री सेल्सियस तक और बढ़ सकता है। इसी के परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़ आना, सूखा पड़ना, समुद्री तूफान, सुनामी, हरे–भरे वनों का सूखे रेगिस्तान में तब्दील होना, वातावरण का निरन्तर तापमान बढते रहना इत्यादि में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस समस्या को नियंत्रित रखने एवं इससे मुक्ति पाने के लिए सारे विश्व के देशों ने कमर कस ली है। वृक्षारोपण कार्यक्रमों को बढ़ाव दिया जा रहा है। ऐसी वृक्ष प्रजातियों का वृक्षारोपण किया जा रहा है जिनकी वृद्धि तीव्र गति से होती हो और जो वातावरण के तापमान को नियंत्रित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।

सबसे पहले इस समस्या को दुनिया के विभिन्न देशों ने 1992 में ''पृथ्वी सम्मेलन'' (Earth Summit) के दौरान उठाया था। इसी सम्मेलन के दौरान ''संयुक्त राष्ट्र'' ने United Nations Framework Convention on Climate Change (UNFCCC) की स्थापना की। इसकी स्थापना वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों के स्तर को नियंत्रित करने के लिए, पर्यावरण को हानि पहुँचाए बिना वैश्विक आर्थिक विकास के लिए और भविष्य में भोज्य पदार्थों के उत्पादन को किसी संभावित खतरे से बचाने के लिए हुई थी। 11 दिसम्बर 1997 को जापान के क्योटो शहर में विश्व भर के देशों ने मिलकर एक संधि पर हस्ताक्षर किए जिसे ''क्योटो प्रोटोकॉल'' कहा जाता है।

क्योटो प्रोटोकॉल के तहत विकसित देशों जैसे अमेरिका, इंग्लेंड, जर्मनी और फ्रान्स इत्यादि को 2008–2012 के दौरान ग्रीन हाउस गैसों का स्तर सन् 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत तक कम करना होगा। इसके तहत मुख्यतः 6 ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4), नाइट्रस ऑक्सइड (N_2O), हाइड्रोलोरोकार्बन (HFCs), परलोरोकार्बन (PFCs) और सल्फर हेक्सालोराइड (SF_6), के स्तर को उक्त वर्णित स्तर तक लाना होगा।

एक लम्बे समय तक अनिश्चितता की स्थिति बरकरार रहने के बाद अन्ततः 16 फरवरी 2005 को ''क्योटो प्रोटोकॉल'' लागू हो गया। इस प्रोटोकाल के तहत बाजार पर आधारित 'क्लीन डेवलपमेंट मेकेनिज्म' (CDM), को लागू किया गया, जिसके तहत विकासशील देश जैसे भारत व अन्य एशियाई देश अपने देशों में वातावरण सुगम निवेश कर सकते हैं जिससे उनका विकास हो सके। यह निवेश वनीकरण और पुनर्वनीकरण जैसी परियोजनाओं में किया जा सकता है। वनीकरण, पुनर्वनीकरण एवं वनों को काटने से बचाने में अर्जित Certified Emissions Reductions (CERs), विकासशील देश विकसित देशों को बेच सकते है।

वर्तमान दौर में आज का समृद्ध, लघु एवं सीमांत कृषक आधुनिक कृषि तकनीक से खाद्यान्न में स्वावलम्बी

तो हो गया है किन्तु वह आज भी अन्य आवश्यकताओं जैसे ईंधन कृषि औजारों, ईमारती लकड़ी, पशु चारा, गृह निर्माण एवं वन औषधियों के लिये वनों पर ही पूर्णतया आश्रित है। वनों की असीमित कटाई के कारण मूल्य निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में वनोपज की कमी के कारण वे शहरों की ओर पलायन कर रहे है। देश की निरंतर बढ़ती जनसंख्या के परिणामस्वरूप कृषि योग्य भूमि की मांग बढ़ती ही जा रही है किन्तु अन्य सामुदायिक आवश्यकताओं जैसे सड़क, नहर, भवन एवं अन्य परियोजनाओं में भूमि का अधिकाश हिस्सा उपयोग हो रहा है। अतः समय आ गया है कि हमें एक ही भूमि पर कृषि फसलों के उत्पादन के साथ–साथ बहुउद्देशीय वृक्षों का भी समावेश करना पड़ेगा ताकि जलाऊ लकड़ी, पशु–चारा, इमारती लकड़ी एवं औषधियों की आवश्यकता पूरी हो सके तथा प्राकृतिक वनों पर दबाव कम हो सके। अतः यह आवश्यक हो गया कि हमें परती भूमि, नाले, सड़क व अन्य खाली स्थान के साथ खेतों में फसलों के अनुरूप वृक्षों को लगाना पड़ेगा तथा उपलब्ध संसाधनों, भूमि के प्रकार एवं बाजार की मांग के अनुरूप वृक्षों का चयन करना होगा। कृषि फसलों के साथ एक ही भूमि पर वृक्षों के समावेश को सामान्यतः कृषि वानिकी कहा जाता है, क्षेत्र विशेष को ध्यान में रखते हुये उपयुक्त कृषिवानिकी पद्धतियों का समावेश कर वर्तमान फसल पद्धति को लाभप्रद बनाया जा सकता है एवं कृषकों के आर्थिक सामाजिक विकास को एक विशेष गति प्रदान की जा सकती है साथ ही मृदा जल एवं वन संरक्षण को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है।

कृषि वानिकी भूमि प्रबन्ध की ऐसी पद्धति है जिसके अन्तर्गत एक ही भूखण्ड पर कृषि फसलों एवं बहुउद्देशीय, बहुवर्षीय वृक्षों का समावेश कर पर्याप्त उत्पादन के साथ पशुपालन व्यवसाय को भी लगातार क्रमबद्ध तरीके से किया जाता है तथा भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि हमारे देश में वनों के अलावा 14 से 24 अरब के बीच वृक्ष पाए जाते है जो कि 1.7 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैले हुए हैं। ये वृक्ष 49 प्रतिशत जलाऊ लकड़ी एवं 48 प्रतिशत इमारती लकड़ी प्रति वर्ष प्रदान करते हैं। देश में जलाऊ लकड़ी की खपत लगभग 20 करोड़ टन और इमारती लकड़ी की खपत 6.4 करोड़ क्यूबिक मीटर प्रति वर्ष है।

कृषि वानिकी के आधारभूत सिद्धान्त

(1) कृषि वानिकी प्रारूप के घटकों–वृक्षों एवं फसलों की कृषि जलवायवीय आवश्यकताओं में समरूपता होना।

(2) घटक फसलों के प्रकाश की आवश्यकताएं एक दूसरे की पूरक होनी चाहिये।

(3) गहरी जड़ों वाले घटक को उथली जड़ों वाले घटक के साथ लगाना।

(4) अधिकतम वृद्धि का समय अलग–अलग होना चाहिये।

(5) एक दूसरे पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले पौधे नहीं होने चाहिये।

(6) कृषक को मृदा–जल–वृक्ष सम्बन्ध का भी ज्ञान होना आवश्यक है।

कृषि वानिकी क्यों ?

(1) एक ही भूखण्ड से विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जैसे खाद्यान्न, पशु आहार, रेशा तथा जलाऊ लकड़ी इत्यादि।

(2) बेमौसम वर्षा का उपयोग, बहुवर्षीय वृक्षों एवं फसलों को लेकर ही संभव है।

(3) अकाल, सूखे, अनावृष्टि (कम बर्षा) एवं अतिवृष्टि की स्थिति में वृक्षों से राहत एवं आय।

(4) वृक्षों की जड़ें गहरी होने से फसल के साथ पोषक तत्वों व नमी में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं।

(5) भूमि क्षरण, भूमि कटाव रोक, जल संचित करना संभव।

(6) प्रकृति से होने वाले प्रकोपों से बचाव।

(7) अपनी एवं बाजार की पूर्ति संभव जैसे जलाऊ वन, पशु आहार, फल तथा रेशा इत्यादि।

(8) प्रदूषित पर्यावरण में सुधार के साथ, फसलों के निषेचन की संभावना बढाना जिससे फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त हो।

(9) फसलों का ओले, शुष्क गर्म हवा, वर्षा व पाले से बचाव।

विभिन्न घटकों के स्वभाव/कृषकों की दैनिक जीवन में वृक्षों की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये कृषि वानिकी का वर्गीकरण किया गया है जिसके विविध स्वरूप निम्न है:

(1) कृषि – वृक्ष पद्धति

(2) वृक्ष – चारागाह पद्धति

(3) कृषि – वृक्ष–चारागाह पद्धति

(4) कृषि – वानिकीय–उद्यानिकी पद्धति

(5) कृषि – वृक्ष, चारागाह, उद्यानिकी पद्धति

कृषि वानिकी हमारे देश में ही नहीं अपितु सारे विश्व में जलवायु परिवर्तन में एक खास भूमिका निभा सकती है। इसमें कृषि प्रजातियों एवं वानिकी से संबंधित वृक्ष दोनों ही वातावरण से कार्बन डाइ आक्साइड (CO_2) को अवशोषित करते हैं। कृषि वानिकी वनों के अलावा एक आकर्षक उपाय है क्योंकि :

(1) इसमें कार्बन पौधों में और मृदा में इकट्ठा हो जाता है।

(2) वृक्ष प्रजातियों से उत्पन्न जलाऊ लकड़ी किसानों की दैनिक जरूरतों को पूरा करती रहती है जिससे किसान वनों की तरफ अग्रसर नहीं होते हैं और वनों का ह्रास कम होता है।

(3) वृक्षों से इमारती लकड़ी भी प्राप्त की जा सकती है जिससे प्राकृतिक वनों पर निर्भरता कम हो जाती है।

(4) कृषि वानिकी से किसानों की आय किसी हद तक बढ़ जाती है जिससे किसान अतिरिक्त आय के लिए जंगलों की तरफ नहीं जाते।

विश्वभर में निरन्तर अनुसंधान ये दर्शाते हैं कि कृषिवानिकी को बढ़ावा देकर वातावरण से कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) की एक बड़ी मात्रा को अवशोषित किया जा सकता है इस प्रकार ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा को कम किया जा सकता है इस प्रकार वातावरण के तापमान में निरन्तर हो रही वृद्धि को रोका जा सकता है। एक नए अध्ययन के अनुसार विश्व में उष्णकटिबंधीय कृषि वानिकी के माध्यम से 12–228 मे.ग्रा. कार्बन प्रति हैक्टेयर की दर से वातावरण से कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) को अवशोषित किया जा सकता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि विश्व में 585 –1215 x 10^6 हैक्टेयर भूमि पर कृषि वानिकी लगाई जा सकती है। इस प्रकार सारी दुनिया में कृषि वानिकी की सहायता से 1.2–2.2 पीको ग्राम कार्बन अगले 50 सालों में अवशोषित किया जा सकता है।

भारत में कृषि वानिकी द्वारा कार्बन का औसत अवशोषण लगभग 25 टन कार्बन प्रति हैक्टेयर है और कृषिवानिकी के लिए लगभग 9.6 करोड़ हैक्टेयर भूमि उपलब्ध है। कृषिवानिकी के अन्तर्गत कृषि उपज को बढ़ाया जा सकता है। हरियाणा के शुष्क क्षेत्रों में प्रोसोपिस, बबूल और नीम को खेतों में लगाकर ज्वार की पैदावार को क्रमशः 86 प्रतिशत, 58 प्रतिशत और 17 प्रतिशत तक बढ़ाया गया है। क्योंकि वृक्षों को खेतों में लगाने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। नमी बरकरार रहती है और मृदा में खनिज पदार्थों के बढ़ने से कृषि उपज की पैदावार बढ़ जाती है। देश के उत्तरपूर्व प्रदेशों जैसे मेघालय और असम में भी वृक्षों की प्रजातियों को कृषि उपयुक्त भूमि में लगाकर वहाँ के किसानों ने 2 से 3 गुना आय अर्जित की है। उपरोक्त अध्ययनों से निष्कर्ष निकलता है कि हमें कृषि वानिकी को बढ़ावा देना चाहिए। प्राचीन काल से चली आ रही परंपरागत कृषि वानिकी पद्धतियों को निरन्तर जारी रखना चाहिए और नई–नई पद्धतियों को विकसित करते रहने की दिशा में हमें अग्रसर रहना चाहिए। वैज्ञानिकों एवं अनुसंधानकर्ताओं को किसानों के साथ मिल–जुलकर उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुसार नए–नए कृषि वानिकी मॉडलों का विकास करना चाहिए एवं विकसित मॉडलों के आर्थिक दृष्टिकोण को भी भली–भाँति ध्यान में रखना चाहिए। कृषि वानिकी को अपनाकर न केवल किसानों की दैनिक जरूरतों को पूरा करके ग्रामों की आर्थिक स्थिति को मजबूत किया जा सकता है अपितु वातावरण से ग्रीन हाउस गैसों को अवशोषित करके जलवायु को भी सुगम बनाया जा सकता है।

दीमक : एक परिचय

डॉ. आर. के. ठाकुर
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

दीमक हम सबके लिऐ एक जाना पहचाना जीव है जो हमको घर के आसपास या घर के अन्दर अपनी उपस्थिति अवगत कराता है। यह हमारी फसलों, को वन्य पौधशालाओं तथा पेडों को, फल वृक्षों को सब्जियों को, घरों में खिड़कियां, दरवाजे, छत, अलमारी में रखी किताबों को अथवा कपड़ों को अत्यन्त नुकसान पहुँचाती है। आर्थिक दृष्टि से इनके द्वारा किऐ गए नुकसान का मूल्यांकन नहीं हुआ है मगर ऐसा अनुमान है कि हर साल लाखों रूपये का नुकसान करती है। दीमक को सफेद चीटी (White ants) भी कहते है जो भ्रामक है शायद यह चीटियों की तरह दिखती है तथा जमीन में रहती है इसीलिए बहुत समय पहले से इनको सफेद चीटी (White ants) कहा जाता है जो अभी तक प्रचलित है।

पूरे विश्व में दीमक की 2300 प्रजातियां पाई जाती है तथा भारत में 337 दीमक की प्रजातियां पाई जाती है। उत्तरी भारत में 73, दक्षिण भारत में 98, पश्चिम भारत में 61, मध्य भारत में 54 तथा पूर्वी भागों में 43 प्रजातियाँ मिलती है। कुछ प्रजातियाँ तो सब जगह मिलती है मगर कुछ जलवायु के मुताबिक विशेष क्षेत्रों में मिलती है। जैसा कि पहाड़ों पर मिलने वाली कुछ प्रजातियाँ दूसरी जगह नहीं मिलती है। इसी भांति कुछ प्रजातियाँ पेड़–पौधो पर ज्यादा मिलती है तथा कुछ गोबर में, इटों, पत्थरों के नीचे मिलती है। भवनों में भी कुछ प्रजातियों का बोलबाला है।

विश्व में 40^0S तथा 40^0N अक्षांश तथा 10^0C mean isotherm के अन्तर्गत रहती है। यह उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ही मिलती हैं।

दीमकों का वर्गीकरण : दीमक समपक्ष (Isoptera) गण में आती है और कीटों के 29 गुणों में से केवल इन्ही में दो आगे दो पीछे बराबर आकार के पंख होते है। दीमकों को उनके वास के मुताबिक दो वर्गों में बाँट सकते है: काष्ठ निवासी एवं मिट्टी निवासी, काष्ठ निवासी भी दो तरह की होती है: शुष्क लकड़ी में रहने वाली तथा आर्द्र लकड़ी में रहने वाली शुष्क लकड़ी वाली दीमक अक्सर पुराने घरों में लकड़ी की शहतीर में, दरवाजों तथा खिड़कियों में मिलती है।

मृदा वासी : जैसा कि नाम से विदित है केवल जमीन में रहना पसंद करती है तथा भोजन स्रोत तक पहुँचने के लिए सुरंग बनाती है। सबसे ज्यादा प्रजातियां इसी श्रेणी में आती है तथा सामूहिक रूप में सबसे ज्यादा नुकसान इन्ही की वजह से होता है। इन को भी तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है। जैसे कि भूमिगत दीमक (Subterranean termites) बांबी निर्मात्री दीमक (Mound building termites) तथा नीड़ निर्मात्री दीमक (Nest building termite) पहली दो तो हम सबको अक्सर खेतों के आसपास, जंगलों में, मैदानों में दिखाई देती हैं परन्तु नीड़ निर्मात्री दीमक बहुत कम मिलती है। मगर इनका नीड़ इतना सख्त होता है कि उसको केवल कुल्हाड़ी से ही काट सकते है। भूमिदीमक पेड़ों की तथा पौधशालाओं में पौधों की जड़ों में, गेहूँ, गन्ना आदि फसलों की जड़ों में या फिर घर की दीवारों आदि पर सुरंग में से जाती दिखाई देती है।

श्रमिक सैनिक सपंख रानी

दीमक का सामाजिक जीवन शहद की मक्खी चीटियों तथा ततैयों की तरह दीमक एक सामाजिक कीट है जो सुव्यवस्थित बस्ती में रहना पसंद करती है। बड़ी रोचक बात है कि इनमें अलग किस्म के जाति पाई जाती है श्रमिक, सिपाही तथा राजा और रानी, इनमें पूर्ण श्रम विभाजन मिलता है। राजा रानी भूमिगत बस्ती या मिट्टी

की बांबी में शाही कक्ष (Royal chamber) में रहते हैं। इनका काम सिर्फ प्रजनन का ही है। एक बस्ती में अक्सर एक राजा तथा एक रानी ही मिलती है। लेकिन कई बार राजा 2–3 तथा रानी भी एक से ज्यादा होती हैं। शुरू में तो राजा रानी का आकार एक जैसा ही रहता है मगर बाद में रानी का आकार राजा से 5–10 गुना हो जाता है। एक रानी लगभग 15 साल जीती है तथा ऐसा अनुमान है कि अपने जीवन में एक अंडा प्रति सेकेण्ड की रतार से लाखों–करोड़ों की संख्या में अंडे देती है। इनमें वर्षा ऋतु में ऋतु उड़ान में होती है। ऋतु उड़ान के दौरान हजारों की तादात में पंखों वाली दीमक अपनी बस्ती या बांबी से झुण्डों में बाहर आती है तथा उड़ने लगती है इसे वैवाहिक या Honey Moon उड़ान भी कहते है। कुछ देर उड़ने के बाद ये जमीन पर आ जाती हैं तथा युग्म बनाती हैं। एक दूसरे को पसंद करने के बाद नर दीमक मादा दीमक को धड़ के पिछले हिस्से को अपने मुख से पकड़ लेता है तथा फिर किसी ईंट–पत्थर के नीचे दरार में या गिरे पेड़ की टहनियों के नीचे छुप कर जमीन में नया जीवन शुरू करते हैं। मादा अण्डे देना शुरू कर देती है तब कुछ देर बाद उनमें से Nymphs निकलने शुरू हो जाते हैं जो कि सफेद रंग के दीमक की तरह ही होती है। शिशु दीमक कुछ भी कायान्तरित हो सकता है–श्रमिक, सैनिक या राजा/रानी बन सकता है। औसतन पूरे जीवों में से 60–90 प्रतिशत तक केवल श्रमिक ही होते है। शायद इसका कारण है कि बस्ती के सब कार्यों का भार इन्हीं पर रहता है। जैसा कि बस्ती की सफाई करना, बाहर से खाना लाना, बस्ती के बाकी जीवों को भोजन करना इत्यादि उपलब्ध करना।

जब–जब बस्ती पर संकट आता है तथा बाहर से दूसरे कीड़ों का आक्रमण होता है तो सिपाही हमारी सेना की तरह बस्ती को सुरक्षा करते है। इसी लिए इनक चिबुकास्थि (mandibles) ज्यादा विकसित रहते है। इसके अलावा कुछ अलग से तरीके भी अपनाते है जैसे छोटे–छोटे मिट्टी के कणों को अपनी पिछली टांगों के द्वारा दुश्मन पर फेकना, मुँह से सफेद सा तरल पदार्थ पिचकारी की तरह फैंकना, डराने के लिए भयावह आकृति बनाना, दाँतों से काटना आदि।

दीमक बस्ती के बारे में कई ऐसी रोचक बातें है जिससे हमें भी सबक लेना चाहिए। जैसा कि सहनशीलता अक्सर एक बस्ती में दूसरी किस्म की भी दीमक मिल जाती है। जैसे (*Odentoterms Rom Microterms,* इत्यादि) हालांकि इनके आने जाने के रास्ते अलग होते हैं। दीमक ही नहीं, वरन एक बांबी में कई तरह के कीड़े मिलते है। अफ्रीका में तो बांबी 3.4 मीटर तक होती है जिसमें कई बार कुछ पक्षी भी रहते हैं।

बस्ती निर्माण : यह दो प्रकार से होता है। जब बस्ती में दीमक की जनसंख्या क्षमता से ज्यादा हो जाती है। या तो बस्ती का कुछ भाग प्रवास कर जाता है तथा नई बस्ती सृजित करते है जहां पर नए राजा और रानी उत्पन्न करते है या फिर वयस्क के साथ बस्ती के कुछ सदस्य कहीं और चले जाते है तथा पीछे पुरानी बस्ती नए में राजा व रानी उत्पन्न कर लेते है।

दीमक का प्रकोप : पूरे विश्व में लगभग अनुमानित चार लाख जीव रहते है सभी अपने निर्वाह के लिए कुछ न कुछ खाते हैं। इसी तरह कीड़े भी फसलों, पेड़ों आदि पर अपनी जीविका के लिए निर्भर करते हैं। लेकिन समय समय पर जलवायु के मुताबिक इनकी जनसंख्या बढ़ जाती है तो यह अति नुकसान–दायक स्थिति में पहुँच जाती है। तब इनका उपचार करना अति आवश्यक हो जाता है। दीमक भी एक अति हानिकारक जीव है जो बहुत ज्यादा नुकसान करती है। इनमें श्रमिक ही इस के लिए उत्तरदायी है। दूसरी प्रजातियां कोई नुकसान नहीं करती हैं। ये आर्द्रता तथा अंधेरा पसंद करती है तथा उसी में रहती है। इसी लिए इनका जब तक पता चलता है तब तक नुकसान अक्सर मरम्मत के योग्य नहीं रहता।

दीमक पौधशाला में तथा रोपण के पश्चात भी नुकसान पहुँचाती हैं। पौधशाला में पौधे बीज से उत्पन्न पौध या कलमों को करने से पहले 6 माह से 1 वर्ष तक तैयार किया जाता है। इसी समय के अन्तर्गत दीमक का प्रकोप होने के अवसर रहते है। एक अच्छी पौधशाला में ये दीमक की समस्या कम होती है। मगर अगर पौधशाला दीमक ग्रस्त क्षेत्र में है, वन के आसपास है, या वहाँ पर दीमक की बांबी है, तो वर्षा ऋतु में प्रकोप होने के अवसर

बांबी का निर्माण

रहते है। ऐसे में अगर पौधशाला में या रोपण के समय के रहते उपचार नहीं दिया गया हो तो अक्सर 80–90 प्रतिशत मृत्यु होने के अभिलेख है। यह समस्या शुष्क इलाकों में और भी गंभीर रहती है। एक प्रश्न हमेशा विवाद में रहा है कि दीमक प्रकोप प्राथमिक है या द्वितीयक। कई दीमक विशेषज्ञों ने शोध करने के बाद यह निष्कर्ष दिया है कि यह प्राथमिक भी हो सकता है तथा द्वितीयक भी। यह भिन्न भिन्न जगहों के जलवायु घटकों पर निर्भर करता है। लेकिन प्रायः यह द्वितीयक प्रकोप होता है। दीमक को पौधशाला में 300 ग्राम 1% थियोडीन डस्ट या 0.01% – 0.02% क्लोरोपायरीफॉस या एण्डोसल्फान का उपचार देना चाहिए। एक क्यारी (10 x 1मी) में 50 लीटर कीटनाशक का जल घोल छिड़काव करने से पौधों का दीमक से बचाव रहता है।

वन वृक्षों तथा फलदार वृक्षों पर प्रकोप

पौधों को दीमक से ज्यादा भय 1–3 साल तक ज्यादा भयंकर रहता है शोधकर्मियों का अनुमान है कि

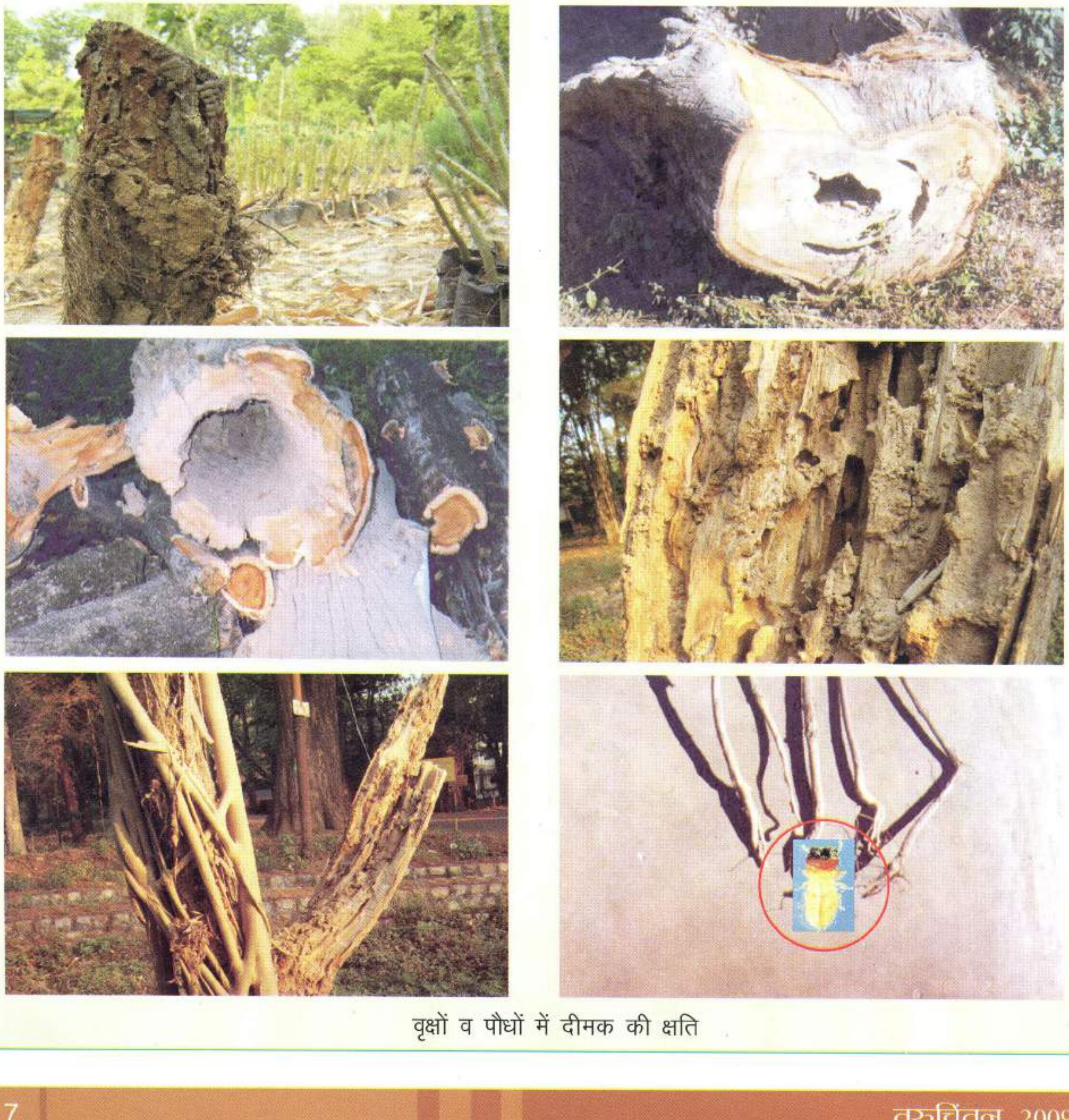

वृक्षों व पौधों में दीमक की क्षति

बड़े पेड़ों को दीमक ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचाती है। अक्सर पेड़ों के उपर मिट्टी की सुरंग या परत दिखाई देते है। इनके नीचे दीमक आती जाती रहती है तथा बाहर छाल/खाल को खाती रहती है। इनका संबंध जमीन के नीचे दीमक बस्ती में रहता है। आज तक पूरे विश्व में सिर्फ उदाहरण है जब पूरे पेड़ दीमक प्रकोप की वजह से बिल्कुल नष्ट हो गया है। भारत में 1954 में गोरखपुर वन प्रभाग में सागौन वृक्ष तथा में यूकेलिप्टिस के पेड़ *Odontermes pervidens* तथा *Coptotermes acicaniformus* की वजह मर गऐ थे। ऐसे ही उत्तराखण्ड के भाभर तराई क्षेत्र में पोपलर को भयंकर नुकसान हुआ था। ऐसे पेड़ों को दीमक से रक्षा हेतु कीटनाशक के घोल से उपर की मिट्टी साफ करके ब्रुश से अच्छी तरह पोत देना चाहिए।

बांबी का उपचार

दीमक की बाम्बी का उपचार करना अतिआवश्यक है। यहीं से वर्षा ऋतु में ऋतु उड़ान से इनका प्रजनन प्रारम्भ होता है। कुछ किवदंतियों के अनुसार दीमक की रानी को मारने से बाम्बी खत्म हो जाती है। मगर ऐसा नहीं है। दीमक में नई रानी या राजा उत्पन्न करने की क्षमता होती है। कई बार खेतों के पेड़ों के पास या जगलों में बाम्बी मिलती है जिसमें दीमक नही होती है। इसके कुछ और कारण होते है जब पूरी की पूरी दीमक बस्ती पास में कहीं और स्थानांतरित हो जाती है तो ऐसा होता है। दीमक की प्रजातियों के मुताबिक बांबी भी अलग–अलग आकार की होती है जो चारों तरफ से बंद रहता है। केवल एक दीमक प्रजाति में खूब बड़े–बड़े छेद रहते हैं। दीमक की बाम्बी के उपचार के लिए विशेषज्ञों ने उसकी ऊँचाई के मुताबिक प्रभावी कीटनाशी उपचार देने के लिऐ शोध किया है। इसके अनुसार 90 सेमी, 1.20 मीटर, 1.50 मीटर, 1.80 मीटर तथा 2.10 मीटर की बाम्बी के लिए 4.5 लीटर, 23 लीटर, 45 लीटर, 82 लीटर तथा 123 लीटर कीटनाशक घोल को बाम्बी में बड़े छेद बनाकर बड़े मुहं वाली कीप से अन्दर डालना चाहिए। ऐसा अनुमानित है कि एक सप्ताह में बाम्बी बस्ती खत्म हो जाती है। दुसरा तरीका बाम्बी को एल्यूमीनियम फॉसफाइड (2 गोली/मी.) से विषोपचारित किया जाता है। दीमक धूम क्रिया से मर जाती है। अपरिष्कृत तरीकों मे कुछ लोग बाम्बी को तोड़ कर मिट्टी का तेल डाल कर जला देते है।

भारतीय उपमहाद्वीप या दक्षिणी एशिया में भवनों को मुख्यतः 6 प्रजातियां ज्यादा नुकसान पहुँचाती हैं: *Heterotermes indica, Heterotermes malabaricus, Coptotermes heimi* और *Odontotermes obeseus*। इनमें सबसे ज्यादा कहर *Heterotermes* का रहता है। ऐसा माना है कि यह एक बार भवन में प्रवेश कर गई तो उस भवन को इसके प्रकोप से बचाना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ दूसरी प्रजातियाँ भी भवनों को नुकसान पहुँचाने में सक्षम है।

जब भवनों का निर्माण होगा तो हमारे दीमकों का भी आना स्वभाविक है खासकर जो निर्माण कृषि भूमि या वनों के आसपास बनते हैं। आश्चर्य तो इस बात का है कि दीमक कई बड़े शहरों में बहुमंजिली अट्टालिकाओं में भी अपना साम्राज्य स्थापित कर चुकी है। भवनों में दीमक का रोकथाम दो तरह का किया जा सकता है–निर्माणपूर्व या निर्माणोपरांत उपचार। इसके निर्माण पूर्व उपचार ज्यादा आसान तथा प्रभावी है। जब कि निर्माणोपरांत उपचार बहुत ही मुश्किल, कम प्रभावी तथा अधिक खर्चीला है।

निवारक उपचार

(क) निर्माण शुरू करने से पहले सावधानियां

(1) **दीमक की उपस्थिति का ज्ञान करना** : सबसे पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि आपकी जमीन पर या उसके आसपास दीमक का प्रकोप तो नहीं है। या कोई बाम्बी तो नहीं है। दीमकों को आकर्षित करने के लिए बांस या आम की लकड़ी के टुकड़े जमीन में चारों तरफ गाड़ देने चाहिए। इससे मालूम कर सकते है कि वहां दीमकों का संक्रमण है अथवा नहीं।

(2) स्थल की सफाई दीमक के प्रकोप को रोकने के लिए स्थल की सफाई बहुत जरूरी है। जमीन के आसपास या जमीन में सूखी लकड़ियां काष्ठ कचरा अगर है तो जला देनी चाहिए या हटा देनी चाहिए। अगर कोई बाम्बी हो तो नष्ट कर देनी चाहिए।

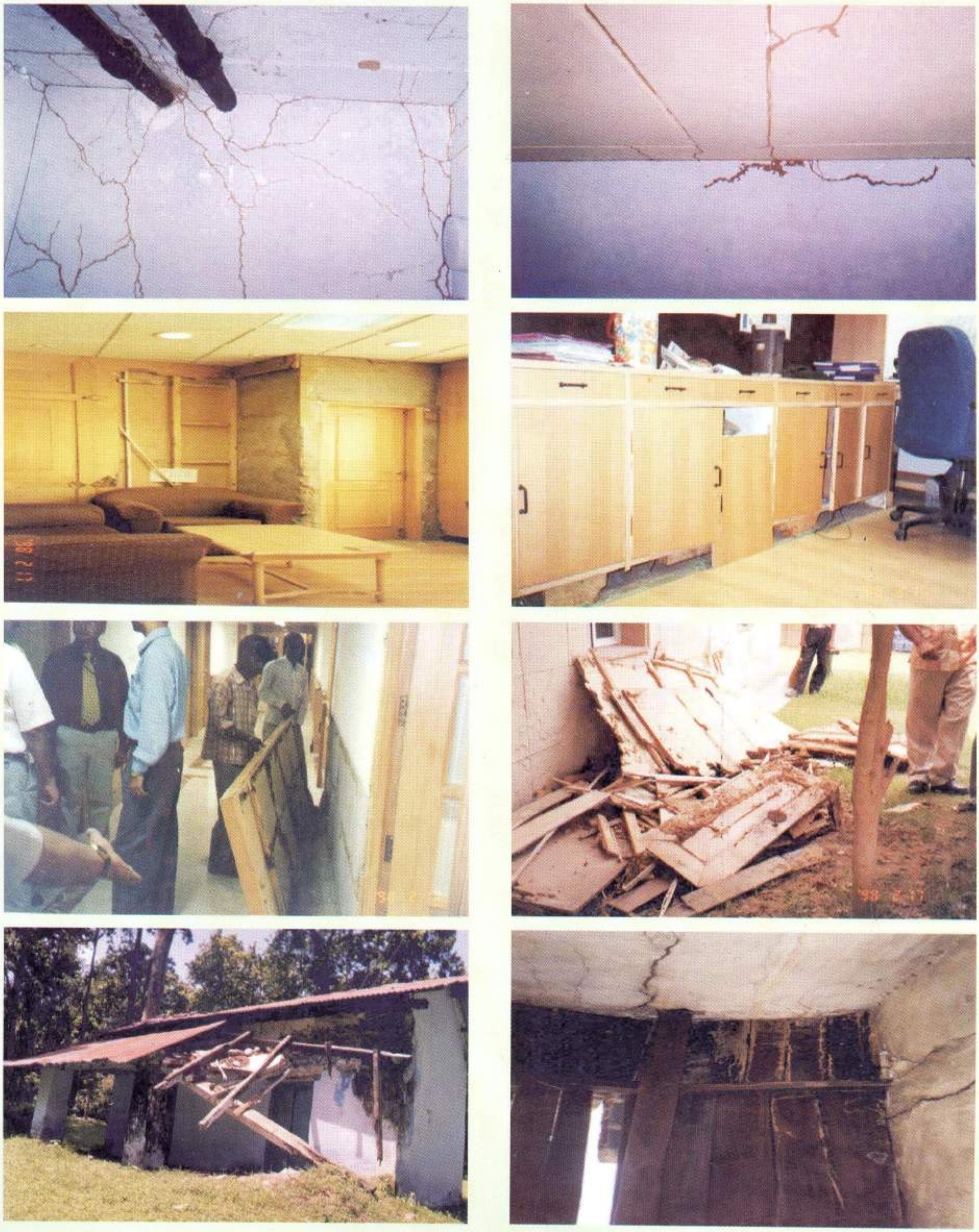

भवनों में दीमक का प्रकोप एवं क्षति

(ख) भूमि का उपचार

(1) भवनों का निर्माण करते समय उनकी नीवों को प्रारम्भ में ही विषाक्त बनाया जाना चाहिए। मृदा का भी उपचार करना चाहिए।

(2) भवन के चारों ओर खाई खोदकर विषाक्त विलयन का फव्वारे से छिडकाव करना चाहिए। यह विषाक्त खाई दीमकों के प्रति रासायनिक अवरोधक का काम करेगी।

(ग) निर्माण के दौरान सावधानियां

(1) नीव सावधानी पूर्वक बनानी चाहिए ताकि कोई दरार आदि न हो जिससे दीमक अन्दर जा सके।

(2) नीव में कंक्रीट या मसाला डालने से पहले इसमें रसायन घोल मिला लेना चाहिए।

(3) फर्श सीमेंट का बनाना चाहिए। इसमें दरार नहीं होना चाहिए। फर्श बनाने से पहले काफी मात्रा में विष विलयन प्रयोग करना चाहिए।

(4) इमारती लकड़ी का उपचाररू भवन निमार्ण में काम आने वाली प्रकाष्ठ दीमक अवरोधक होनी चाहिए तथा दीमक के प्रति रसायनिक उपचार भी कर लेना चाहिए।

(5) भवन में रखा हुआ सामान, जैसे कि फर्नीचर कागज–पत्र, अल्मारियों या बक्सो में कपड़े, रैक और उन पर रखी पुस्तकों को भी दीमकों से सुरक्षित करने के लिए सावधानी रखना आवश्यक है। इनकी सुरक्षा के लिए इन्हें दीवार से सटाकर नहीं बल्कि उनसे कुछ दूर रखना चाहिए। समय समय पर सामान्य जांच करते रहना चाहिए। इस विषय में अत्यंत सतर्क रहना चाहिए।

निर्माणोपरांत उपचार (प्रतिकारी उपाय)

यदि निरोधी या निवारक उपचारों के पहले से काम में न लाया गया हो ओर बाद में कभी दीमक का प्रकोप आ जाए तो उपाचार शीघ्र से शीघ्र करवाना चाहिए। इसके लिए व्यवसायिक व्यक्ति तथा वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए। निर्माणोपरांत उपचार बहुत ही मुश्किल, जटिल तथा खर्चीला कार्य है। प्रतिकारी उपाय के बिंदु इस प्रकार है।

(क) भवन का निरीक्षण करके, दीमक की उपस्थिति, स्रोत तथा आने के रास्तों को ज्ञात करना चाहिए तथा अच्छी तरह कीटनाशक रसायन से उपचारित करना चाहिए। अगर कई दीमक की सुरंगे नजर आऐ तो अच्छी तरह उस स्थान को साफ करके, सुरंगे कहां से शुरू हुई है पता लगाना चाहिए तथा उसमें इंफेक्शन से कीटनाशक डालना चाहिए।

(ख) जैसा कि पूर्वनिर्माण उपचार में बताया गया है चार दीवारी तथा भवन की दीवारों का उपचार वैसे ही करना चाहिए। भवन के चारों ओर तथा भवन के अन्दर अगर दीमक प्रकोप अत्यधिक है तो फर्श में चारों ओर दीवार के साथ साथ 15 से.मी. की इसी पर मशीन से छेद करके 1–2 से.मी. व्यास तथा 45 से.मी. गहराई के उसमें काफी मात्रा में विषाक्त विलयन (1 प्रतिशत) डाल दें। उपचार के बाद सीमेंट प्लास्टर से छेद बन्द कर देने चाहिए।

(ग) गवाक्षों तथा द्वारोंए विशेषकर इनकी चौखटों पर दीमक का नुकसान बहुत ज्यादा देखने को मिलता है अगर तो नुकसान की मरम्म्त नहीं हो सकती है तो उस हिस्से को बदलवा देना ठीक है। अगर अभी नुकसान शुरू हुआ है तो मिट्टी की सुरंग को साफ करके 0.5 प्रतिशत क्लोरोफायठीफास घोल से अच्छी तरह उपचारित कर दें। यदि छत में लगी लकड़ी में दीमक लग गई है तो उसे निकलवा कर उसे निपीड़ द्वारा परिरक्षी से उपचार की गई लकड़ी लगा देनी चाहिए। यदि हानि अधिक न हो तो विषाक्त विलयन छिड़कना, दीमक आक्रान्त लकड़ी को बदलना और छिद्र बनाकर छत वाली दीवार में भी विष पहुंचाना चाहिए।

(घ) यदि मकान के भीतर की वस्तुओं जैसे उपस्कर, पुस्तकें, अल्मारी मंजुषा आदि में दीमक लगी हो तो पहले यह ज्ञात करना चाहिए कि दीमक कहां से आई, तत्पश्चात उस क्षेत्र में विषाक्त विलयन छिड़क कर या डालकर उसे विषाक्त कर देना चाहिए।

भवनों में दीमक का उपचार

अधिक क्षतिग्रस्त भाग को अलग करके जला देना चाहिए। दीवार में निर्मित अलमारियों में दरारों के द्वारा विष अन्तःक्षिप्त करना चाहिए।

(ड.) स्वच्छता के विचार से भी भूमि पर या वन के प्रांगण में कूड़ा-कर्कट इकठ्ठा नहीं होने देना चाहिए। यह तो दीमक के लिए प्रजनन स्थल का कार्य करेगा।

बड़े बंगलों आदि में खूब सारे पेड़-पौधे फलों के पेड़ या सब्जियों तथा फूलो की क्यारियां होती है। अगर इनमें दीमक है या आ गई है तो यह सुनिश्चित है कि कभी न कभी यह भवन के अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न अवश्य करेगी। अक्सर देखा गया है कि इनका प्रवेश जमीन के नीचे मेनहोल या भूमिगत सेनेट्री बम्बो या बिजली के लिए बनाए गए खांचो के बीच में या बाहर की दीवार में कही दरार है तो अन्दर प्रवेश करने की चेष्टा करती है। इस लिए ऐसे भवन मालिको को बाहर के क्षेत्र में दीमक का निरीक्षण करते रहना चाहिए। सावधान रहे, तथा अगर दीमक हो तो समय समय पर उपचार देते रहना चाहिए। कुल मिलाकर दीमक से बचाव का मूलमंत्र स्वच्छता और सहजता है।

पौधशालाओं में नाशीजीव का प्रबंधन

आर. एस. भण्डारी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

पौधशाला वह स्थान है जहां प्रतिरोपण के लिए स्वस्थ स्टॉक हासिल करने हेतु लक्ष्य के साथ पौधे उगाने के लिए बीज बोते है अथवा कलमों को प्रतिरोपण करते हैं। इस अवस्था में कोमल प्ररोहों और सरस पत्तियों के कारण इन पर नाशिकीट का आक्रमण होता है।

पौधशालाऐं नाशीजीवों के संवर्धन के लिए आदर्श वातावरण उपलब्ध कराती हैं। प्रायः इन नाशी जीवों का प्रकोप पौधशालाओं में पौधों की बड़े पैमाने पर हानि के लिए उत्तरदायी हैं, जिसके परिणामस्वरूप रोपण लक्ष्यों को हासिल करने में असफलता होती है। पौधशाला स्टॉक में प्रमुख क्षति कीटों के विभिन्न समूहों द्वारा उत्पन्न होती है विभिन्न नाशीजीवों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है :

(1) प्रमुख पौधशाला नाशीजीव
- (क) काकचेफर
- (ख) कटुवा सूंडी
- (ग) दीमकें
- (घ) झींगुर

(2) गौण पौधशाला नाशीजीव
- (क) निष्पत्रक
- (ख) रस चूषक
- (ग) टिड्डा

(3) गैर कीट नाशीजीव
- (क) सूत्र कूमि
- (ख) कृन्तक (रोडेन्टस)

प्रमुख पौधशाला नाशीजीव

(क) काकचेफर(श्वेत सूंडी)–(कॉलीओप्टेराः स्केरेबिडी)

ये विशेषकर उत्पादन पौधशालाओं में वानिकी के प्रमुख नाशी जीव है। वयस्क निष्पत्रक होते हैं और सायं (सूरज छिपने पर) बाहर आते हैं जबकि डिम्भकी रूप को सफेद सूंडी के रूप में जाना जाता है। ये करीब 15 से 30 से.मी. नीचे मिट्टी में रहते हैं और पौधों की जड़ों को क्षतिग्रस्त करते हैं। वयस्क भृंग मई और जून में निकलते है। ये झुण्ड बनाकर आते है तथा रात में पौधों की विभिन्न प्रजातियों में निष्पत्रण करते हैं। चेफर भृंग के वयस्क अच्छे उड़नें वाले होते हैं और प्रकृति से बहुभक्षी होते हैं और ये प्रायः पौधशालाओं के समीपवर्ती वन क्षेत्रों के वृक्षों की पत्तियों का भोजन करते है। ये शंकुधारी वृक्षों के साथ ही साथ पृथुपर्णी पौधों के गंभीर नाशीजीव हैं। भारत के हिमालयी क्षेत्रों में शंकु वृक्षों की पौधशालाओं में पौधों को क्षति पहुंचाने वाली प्रजातियाँ हैं – *ग्रेनिडा एल्बोस्पर्सा, होलोट्राइकिया लोंगपीनिस, मीलोलोन्था फूर्सिकोडा* और *पापिलिया सीएना*।

पृथुपर्णी पादप की पौधशालाओं में पौध को क्षति पहुँचाने वाली प्रजाति वंश (जीनस) होलोट्राइकिया के काकचेफर हैं:

होलोट्राइकिया कॉन्सेनगुनिया, एच. इन्टरमीडिया, एच. सीराठा और *एच. प्रास्तीमीटिका*

प्रबंधन

संवर्धनिक / यांत्रिक विधियाँ

- परभक्षियों समक्ष एवं धूप में सूंडी को अनावृत करने के लिए पौधशाला क्षेत्र की गहरी जुताई दो तीन बार करनी चाहिए।
- बीज क्यारियों को चेफर भृंगो के झुंड के आने से कम से कम एक माह पहले तैयार करना चाहिए और गरम मौसम अथवा पूर्व मानसून महीनों में नहीं तैयार करना चाहिए।
- बसन्त अथवा सर्दी में बुआई करनी चाहिए क्योंकि भृंगों के उस समय तक पंख नहीं निकलते हैं।

- चेफर भृंगों को झुंडों के निकलने की अवधि के दौरान क्यारियों की निराई संक्रिया से बचना चाहिए।
- भृंगों के निकलने के दौरान प्रकाश पाश (लाइट ट्रैप) का उपयोग युवा पौधों में क्षति के प्रभाव को घटाता है।

रासायनिक नियंत्रण

फोलीथियान 10: डस्ट को जब बुआई हेतु क्यारी तैयार करते समय मृदा में यांत्रिक रूप से मिलाते है तो यह प्रभावी नियंत्रण करता है। पौधशालाओं में सफेद सूंडी को 200 ग्रा. थीमेट 10 जी प्रति क्यारी (10 x 1 मी.) प्रयुक्त करके नियंत्रित किया जा सकता है।

(ख) कटुवा सूंडी (लेपिडोप्टेरा : नॉक्टिडी)

सामान्यतः ब्लैक, ग्रीजी अथवा साधारण कटुवा सूंडी के रूप में जाना जाता है यह पौधशालाओं के महत्वपूर्ण नाशी जीव हैं। भारत में इस कीट की 4 प्रजातियाँ पौधशाला पादप में क्षति पहुँचाने के लिए ज्ञात हैं किन्तु इसमें *एग्राटिस इप्सिलोन* सबसे महत्वपूर्ण कटुवा सूंडी है जो शंकुवृक्ष साथ ही साथ पृथुपर्णी पादप प्रजातियों को क्षति पहुँचाती है।

कटुवा सूंडियों के लार्वा सर्वभक्षी होती है और वन पौधशालाओं में गंभीर नाशी जीव है। मार्च–अप्रैल में अंकुरण के तुरंत बाद युवा पौधों को काट देते है। कटुवा सूंडी प्रजाति पुनर्जनन क्षेत्रों में सबसे गंभीर नाशीजीव है। कटुवा सूंडी के लार्वा मिट्टी में 5–15 से.मी. गहराई में छोटे बिलों में दिन में छिपे रहते है, ये रात में युवा पौधों को काटने के लिए बाहर आते है और भू–स्तर पर इन्हें काट देते है या कलियों एवं नए पत्तों को खा जाते हैं। भूखे लार्वा सामान्य भोजन के लिए अपनी खोज मे अपनी खाद्य आवश्यकता से अधिक पौधों को क्षति पहुँचाते हैं।

प्रबंधन

संवर्धनिक / यांत्रिक विधियाँ

- कटुवा सूंडी के पतंगे कचरा, पत्तियों, पत्थरों आदि भूमि पर पड़े विभिन्न अन्य वस्तुओं में छिपे रहते हैं इन वस्तुओं को पौधशाला के समीप नहीं रखना चाहिए स्थानों से एकत्र कर सकते है।
- वन पौधशालाओं में गहरी जुताई करनी चाहिए ताकि कटुवा सूंडियों के लार्वा धूप में अनावृत हो जाए, जिससे कीट भक्षी उन को खा सकें।
- रासायनिक विधियाँ पौधशालाओं में पादपों को लगाते समय कटुवा सूंडियों के विरूद्ध सर्वोत्तम सुरक्षा, पौधशाला क्यारियों को तैयार करते समय मृदा कीट नाशकों जैसे फोलिथियोन 10% डस्ट या थिमेट 10 जी 200 ग्रा. प्रति क्यारी (10 x 1 मी.) की दर से मिट्टी के साथ मिलाना है।

(ग) दीमकें (आइसोप्टेरा : टरमीटिडी)

वन पौधशालाओं में दीमक क्षति व्यापक प्रकृति की है, यद्यपि प्रकोप का प्रभाव और तीव्रता स्थान और प्रजाति के हिसाब से अलग–अलग होती है। दीमक क्षति अच्छी तरह प्रबंधित पौधशालाओं में नगण्य है किन्तु अनुकूल अवस्थाओं में पौधशालाओं में क्षति होती है। ये 30 से.मी. ऊपरी मृदा परत के बीच सामान्यतः मूसला जड़ों के साथ ही साथ पार्श्विक जड़ों को क्षति पहुंचाते है जिसके फलस्वरूप पादपों की मृत्यु हो जाती है। प्रभावित पादप में पत्तियों के पीला पड़ने और मुरझाने के लक्षण दिखाई पड़ते है और परिणामस्वरूप पर्ण निर्जलीकरण होने से पौधे मर जाते है। व्यापक क्षति निम्न द्वारा होती है। *ओडोन्टोटर्मीस ओबीसस, ओडोन्टोटर्मीस इन्डिकस, ओडोन्टोटर्मीस फाई, ओडोन्टोटर्मीस इन्सर्टोइडस, माइक्रोटर्मीस ओबीस,* आदि व्यापक क्षति करने वाली प्रजातियाँ हैं।

नियंत्रण क्लोरोपाइरिफोस अथवा एण्डोसल्फान बुआई पूर्व उपचार अथवा स्थानीय उपयोग (स्थल–उपचारी) अथवा पॉलीपॉट उपचार किया जा सकता है।

(1) एक घन मीटर मृदा के लिए 50 लीटर पानी में क्लोरोपाइरिफोज 20% ई. सी. का 750 मि.ली. जो 20 x 10 से.मी के लगभग 1000 पॉलीबैगों के लिए पर्याप्त है।

(2) रोजकेन की मदद से प्रतिरोपित पॉलीपॉट पौधों में, कीटनाशक का उपयोग करते है। 2500 पौधों के लिए 125 लीटर पानी में क्लोरोपाइरिफोज 20% ई. सी. का 1.88 लीटर की संस्तुति की गई है।

(3) सूखा प्रवण अथवा जल अल्पता ग्राम क्षेत्रों में उपयोग के लिए डस्ट सूत्रीकरण यथा 1 ग्रा. प्रति पॉलीपॉट की दर प्रयुक्त फोलीथियोन 10% डस्ट के उपयोग की संस्तुति की गई है।

(घ) झींगुर (आर्थोप्टरा : ग्राइलिडी)

झींगुर में आम झींगुर, पादप झींगुर, मोल झींगुर और गार्डन झींगुर शामिल है। झींगुर के शिशु कीट और वयस्क शाक भक्षी होते हैं, और पौधशाला में पौधों और निम्न प्ररोहों पर आक्रमण करते है। झींगुर रात को निकलते है और सभी पौधों एवं निचली शाखाओं को काटकर भोजन के लिए अपनी सुरंगों में ले जाते है। कुछ प्रजातियाँ इस प्रकार हैं: *ब्रेकिपट्रीस पोर्टीन्टोसस, जीम्नोग्राइलस एरीथ्रोसी* और *ग्रायलोटेल्पा अफ्रकाना,*।

नियंत्रण

(1) अंडों और युवा कीड़ों को खत्म करने के लिए 20–30 से.मी. गहरी जुताई कम से कम तीन बार करनी चाहिए।

(2) नियमित रूप से पौधशालाओं का निरीक्षण करना और पौधशाला क्यारियों में सिंचाई से पहले रोजाना सुबह नई सुरंगों को देखना। छड़ी को अन्दर डालें तथा जीवित झींगुर को बाहर निकाल कर मार दें।

(3) देखी गई नई सुरंगों में किसी भी मृदा कीटनाशक से तैयार कीटनाशक घोल अथवा पानी में मिट्टी का तेल मिलाकर डालें।

(4) 0.2 प्रतिशत एण्डोसल्फान या डर्सबैन का छिड़काव करें ।

गौण पौधशाला नाशीजीव

(क) निष्पत्रक (लेपिडोप्टेरा)

क्राइसोमीलिड पुर्ण भृंगक : ये वन फसलों को नुकसान पहुँचाने के लिए जाने जाते है। वयस्क पुर्णसमूह, फूल और फलों में बहुभक्षी संहारक हैं।

पत्ती रोलर : वयस्क पत्तियों को रोल करते हैं और लार्वा रोल की भीतरी सतह पर भोजन करते है। ग्रसित पत्ती गिर जाती है।

पत्ती संहारक इल्लियाँ : इल्ली या सूण्डी पत्तियों को खा कर नष्ट कर देती है।

नियंत्रण 0.001–0.002 प्रतिशत, साइपरमेथिन अथवा 0.1–0.25 प्रतिशत फेनिट्रोथिओन का पर्णीय छिड़काव पौधशाला पादपों में प्रभावी सुरक्षा देता है।

(ख) रस चूषक (हेमीप्टेरा)

इस समूह में (अ) लीफ हॉपर (ब) श्वेत भक्षी (स) चूषक कीट और स्केल कीट (चूर्णी मत्कुण) शामिल हैं। कोशिका रस के भारी अधःखनन (डी–सैपिंग) साथ ही साथ विषाक्त लार के फलस्वरूप पादप वृद्धि रूक जाती है और वह कमजोर पड़ जाता है और अन्ततोगत्वा ऊत्तकक्षय होता है। चूर्णी मत्कुण, पत्तियों को खाने के अलावा एक मधुरस जैसे पदार्थ का निस्राव भी करता है जिस पर एक काली भूरी फफूंद विकसित होती है इसके फलस्वरूप पादप में प्रकाश संलेशण और वृद्धि अवरूद्ध हो जाती है।

नियंत्रण

(1) फोरेट (थिमेट), 10 प्रतिशत दोनों का 200 ग्रा. प्रति क्यारी उपयोग।

(2) 0.01–0.02 प्रतिशत जल मिश्रण के पर्णीय छिड़काव के रूप में दैहिक कीटनाशक डाइमीथोएट 20 प्रतिशत ई.सी रस चूसकों के नियंत्रण के लिए काफी प्रभावी पाया गया।

(ग) टिड्डा (आर्थोप्टरा)

पौधशाला पादपों में निष्पत्रण करता है। पर्णवृत तथा पत्तियों के किनारों को कुतर जाता है जिससे खाने की अपेक्षा कहीं ज्यादा पत्तियां भूमि पर गिर जाती हैं।

नियंत्रण

0.2 प्रतिशत मैलाथियान का छिड़काव।

गैर कीटनाशी जीव

(क) सूत्रकृमि : बड़ी संख्या में सूत्रकृमि पाए गए हैं जो पौधशालाओं में क्षति पहुंचाते हैं। वन पौधशालाओं में वर्णित मृदा सूत्रकृमि सामान्यतः जड़ तंत्र पर भोजन

करते हैं किन्तु इसका उत्पीड़न अनावृत्त पादप में देखा गया है।

नियंत्रण

प्रतिरोधी पादप प्रजातियों को उगाकर सूत्रकृमि उत्पीड़न से बचा जा सकता है। उपयुक्त सूत्रकृमिनाशी अथवा मृदा घूम क्लोरोपिकिन, इथाइल ब्रोमाइड, नीमेगॉन, एल्डिकार्ब आदि के साथ मृदा उपचार सूत्रकृमियों के विरूद्ध अच्छी सुरक्षा सुनिश्चित रता है। पौधशाला क्यारियों में करीब 30 से.मी. की दूरी पर और 15–20 से.मी. की गहराई पर डी. डी. मिश्रण, डाइक्लोरोप्रोपेन, 2–3 मि.ली. मात्रा के इन्जेक्शन की संस्तुति भी है। उपचारोंपरान्त क्यारियों को कुछ घण्टे के लिए तिरपाल से ढ़क देना चाहिए। उपचार के एक हते बाद बीज बुआई करनी चाहिए।

(ख) कृन्तक (रोडेंटस)

कृन्तक काफी सक्रिय होते है और वन पौधशालाओं में बार–बार आते है। कृन्तक बोए गए बीजों को खोदकर युवा भ्रूणों को खा जाते हैं इस प्रकार अंकुरण के लिए बीजों को अनुपयुक्त बना देते हैं तैयार पौधशाला क्यारियों में अच्छी तरह तैयार की गई और आर्द मृदा साथ ही साथ पौधों की मोटी मूसला जड़ों की उपस्थिति चूहों के लिए अनुकूल अवस्थाएं उपलब्ध कराती हैं।

नियंत्रण

(1) बिलों में जहरीला खाद्य रखकर विभिन्न कृन्तक प्रजाति को नियंत्रित किया जा सकता है।

(2) वांछित पानी की मात्रा के साथ 100 ग्राम आटा, 5 ग्राम चीनी और 5 ग्राम सरसों के तेल को मिलाकर 5 ग्राम जिंक फास्फेट के साथ जहरीली गोलियां तैयार कर सकते हैं। कृन्तक बाहरी पदार्थ को पहचानने में बहुत चालाक होते है और इन्हें खाते नहीं है, इसलिए यह आवश्यक है कि 2–3 दिन बिना जहर वाला खाद्य प्रलोभन दिया जाए।

(3) पौधशाला क्षेत्र में बिलों को बंद अथवा सील कर देना चाहिए। क्षेत्र में सभी बिलों को एक साथ घूम्रित कर देना चाहिए।

मय में आज साकी ने कोई शै मिला दी है
ढल गया है शीशे में सब खुमार आँखों का ।
— अज्ञात

औषधीय पौधों का विनाश विहीन विदोहन

अशोक कुमार पाण्डेय एवं असीम कुमार मण्डल
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

प्रकृति ने पृथ्वीवासियों को औषधीय पौधों के रूप में आरोग्य का अमूल्य वरदान प्रदान किया है। मानव आदिकाल से इन प्रकृति प्रदत्त औषधीय जड़ी–बूटियों के विशिष्ट भागों का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में करता रहा है। पहले मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ के वनों में अनेक बहुमूल्य औषधीय पौधे प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे। परन्तु जनसंख्या वृद्धि और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग के फलस्वरूप औषधीय पौधों का अन्धाधुन्ध दोहन होने लगा। जिसके फलस्वरूप अनेक औषधीय पौधे अल्प उपलब्धता से लेकर विलुप्ति के कगार पर पहुँच गये हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि समय की माँग को देखते हुए औषधीय पौधों के संरक्षण एवं सतत् विकास के लिए विनाशविहीन विदोहन की पद्धति विकसित की जाये। औषधीय पौधों के विकास में विनाशविहीन विदोहन का बहुत महत्व है, क्योंकि किसी भी वनस्पति के पुनरूत्पादन व गुणवत्ता पर इसके विदोहन तकनीक व समय का सीधा असर पड़ता है। इस दिशा में इस संस्थान द्वारा अनुसंधान कार्य किया जा रहा है तथा कुछ महत्वपूर्ण औषघीय पौधों की विनाशविहीन विदोहन पद्धति विकसित की गई है। प्रस्तुत लेख में सर्पगन्धा, बायविडंग, आँवला, बहेड़ा, अर्जुन एवं मैदा छाल के विनाशविहीन विदोहन की तकनीक के बारे में उल्लेख किया गया है।

मानव आदिकाल से ही औषधीय पौधों का उपयोग विभिन्न प्रकार के रोगों के निवारण में करता रहा है। अधिकांश औषधीय पौधे वनों से एकत्र किये जाते हैं परन्तु वनों में इनकी उपलब्धता निरन्तर कम होती जा रही है। इन औषधीय पौधों की संख्या में कमी का मुख्य कारण वनों के क्षेत्रफल में कमी, प्राकृतिक परिवेश का ह्रास, अवैज्ञानिक विधि से विदोहन व माँग में वृद्धि है। विगत एक दशक से औषधीय पौधों की माँग में वृद्धि हुई है तथा इस बढ़ती हुई माँग को केवल वनों से एकत्र करके पूरा कर पाना सम्भव नहीं है। अतः आवश्यकता है कि इन औषधीय पौधों की व्यापारिक खेती की जाये। प्रायः ऐसा देखा गया है कि औषधीय पौधों के संग्रहणकर्ता इसके पुनरूत्पादन के बारे में न सोचते हुए केवल इन पौधों के विदोहन के बारे में ही चिंतित रहते हैं। जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश औषधीय पौधे अपने प्राकृतिक परिवेश/वनों से लुप्त हो गये हैं या लुप्त होने की कगार पर हैं। संग्रहणकर्ता त्वरित लाभ के कारण औषधीय पौधों को अधिक से अधिक मात्रा में एकत्रित करते हैं जिससे उनका पुनरूत्पादन प्रभावित होता है।

विश्व के अनेक विकसित एवं विकासशील देशों में औषधीय पौधों के प्रति बढ़ती हुई आस्था देखने में आ रही है तथा विश्वस्तरीय चेतना में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। हमारे लिए इनका महत्व स्वस्थ सुखी जीवन व बीमारियों से निवारण के लिए महत्वपूर्ण है। मध्य प्रदेश प्राकृतिक संसाधनों से सराबोर, हरा–भरा अनुपम प्रदेश है। इसमें औषधीय पौधों व अन्य अकाष्ठ वनोपज का विपुल भण्डार है। प्रदेश में रहने वाली अधिकांश आदिवासी व ग्रामीण आबादी आज भी हमारी वन सम्पदा पर जीविकोपार्जन एवं चिकित्सा उपचार हेतु आश्रित है। आज के बदलते परिवेश में, हमारे वनों का सतत् प्रबन्धन, गैर अकाष्ठ वनोपज व औषधीय पौधों की भूमिका को देखते हुए, किये जाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

आज भी आदिवासी व ग्रामीण लोग परम्परागत तरीकों से जड़ी–बूटियों का विदोहन करते हैं। जो कुछ हद तक विनाशविहीन हैं। परन्तु बाहरी माँग के दबाव से कुछ लोग विनाशवान विदोहन कर लेते हैं। इससे वनों की उत्पादकता पर विपरीत असर पड़ता है। हमारे प्रदेश के वनों की उत्पादन क्षमता लगातार बनाये रखने के लिए विनाशविहीन विदोहन की अत्यन्त आवश्यकता है।

अवैज्ञानिक विधि से दोहन

भारत में लगभग 80 प्रतिशत लोग अभी भी स्थानीय जड़ी बूटियों पर निर्भर हैं। देश की एवं समूचे विश्व की आबादी बढ़ने से औषधीय पौधों की मांग अधिक बढ़ गई है। मांग बढ़ने से इनका दोहन हमारे वनों से निरंतर हो रहा है। औषधीय पौधों के समस्त भाग जैसे, जड़, कन्द, तना, फल, बीज, छाल, फूल, पत्ती व लकड़ी को उपयोग किया जाता है परन्तु जड़ का उपयोग सबसे अधिक 29 प्रतिशत किया जाता है। वनौषधियों के संग्रहणकर्ता भी वनवासियों के द्वारा इन पौधों का समूल खुदवाकर मूल एकत्र करते हैं जैसे सफेद मुसली, सतावर, सर्पगंधा आदि। परन्तु उनके पुनः रोपण का कार्य कभी नहीं करवाते। परिणामतः ऐसे पौधे जिनकी मांग अधिक है एवं जिनका निरंतर पुनः रोपण नहीं हो पाता है, विलुप्त हो जाते हैं। अनेक औषधीय पौधे/पेड़ जैसे गुग्गल, चिरायता आदि ऐसे होते हैं जिनके पूरे भागों का उपयोग होता है। अतः संग्रहणकर्ता उन्हें पूरा काटकर व खोदकर ले जाते हैं। अतः ऐसी वनस्पतियां विलुप्त होने की कगार पर आ गयी हैं। जंगलों से बेल, आँवला, हरड़, बहेड़ा आदि औषधीय महत्व के फल हैं वे भी विलुप्त होने के खतरे से खाली नहीं हैं क्योंकि इन वृक्षों के फल निरंतर इकट्ठे कर लिये जाते हैं। इतना ही नहीं इन फलों को तोड़ने के झंझट से बचने के लिए इनको नीचे से काट दिया जाता है जिससे फल आसानी से तोड़े जा सके। जिन वृक्षों की छाल की आवश्यकता होती है (जैसे अर्जुन, मैदा छाल एवं अशोक आदि), उनकी छाल उतार ली जाती है जिससे वह पेड़ सूख जाता है। इस प्रकार वनों से वनौषधियों का दोहन निरंतर निर्मम रूप से अवैज्ञानिक विधि से किया जाता है जिससे विशिष्ट औषधियां विलुप्त होकर केवल इतिहास के पन्नों में ही रह गई है, जैसे संजीवनी बूटी। अनेक औषधीय पौधे विलुप्त होने की कगार पर हैं और यदि यथाशीघ्र उनके संरक्षण के उपाय न किये गये तो कुछ ही वर्षों में विलुप्त हो जायेंगे। भारत में लगभग 450 पादप प्रजातियां ऐसी हैं जिनके अस्तित्व को खतरा है। कुछ का अस्तित्व बहुत शीघ्र ही और कुछ अन्य का एक दशक या उससे पहले समाप्त हो सकता है। प्रमुख रूप से 35 औषधीय पौधों की प्रजातियां ऐसी हैं जिनके अस्तित्व को खतरा है। मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ में पाये जाने वाले गुग्गल, सर्पगंधा, सफेद मुसली, कीरामार, पुष्करमूल, चिरायता, कलिहारी आदि के अस्तित्व को खतरा हो गया है तथा ऐसी 29 प्रजातियों पर भारत सरकार ने अपने देश से निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। इन औषधीय पौधों का चिकित्सा की सभी पद्धतियों में अधिक महत्व है एवं इनके संरक्षण एवं संवर्धन हेतु बढ़ाव मिलना चाहिये।

औषधीय पौधों के विकास में विनाशविहीन विदोहन का बहुत महत्व है क्योंकि किसी भी वनस्पति के पुनरूत्पादन व गुणवत्ता पर इसके विदोहन तकनीक व समय का सीधा असर पड़ता है। औषधीय पौधों के गुण, धर्म व प्रभाव इसमें पाये जाने वाले रासायनिक तत्वों पर निर्भर करते हैं। यह रासायनिक पदार्थ पौधों में एक नियत अवस्था व समय पर अत्यधिक होता है। अतः यदि हमें उच्च गुणवत्ता वाले औषधीय पौधें प्राप्त करने हैं तो हमें उसे एक निश्चित समय पर विदोहन करना होगा। कुछ प्रमुख औषधीय पौधों की विनाशविहीन विदोहन प्रक्रिया के बारे में जानकारी निम्नानुसार हैः

आँवला

आँवला फल पकने के उपरान्त ही पेड़ से तोड़ना चाहिये। सामान्यतः आँवले के फल दिसम्बर व जनवरी माह में पकते हैं। इस समय आँवले के फल तोड़ने से इसमें पर्याप्त उपयोगी तत्व मिलेंगे। इसलिए प्राचीन काल से आँवला को आँवला नवमी के उपरान्त अर्थात् दीपावली के बाद तोड़ने की परम्परा रही है। इसलिए आँवला को पकने के बाद जब वे हल्का पीले या मटमैले रंग का हो जाय, तोड़ना चाहिए।

आँवले के फल, पेड़ से तोड़ना चाहिए न कि पौधों की टहनियों/शाखाओं को तोड़ व काटकर। इस प्रकार से फल तोड़ने से पौधों को क्षति नहीं पहुँचती है। आँवले के फलों का विनाशकारी विदोहन रोकने के लिए क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले पेड़ ग्राम वन समिति के सदस्यों को संरक्षण हेतु आवंटित कर देना चाहिए। आँवले के फल तोड़ते समय लगभग 10 प्रतिशत फल पेड़ पर प्राकृतिक पुनरूत्पादन हेतु छोड़ देना चाहिए। यदि हम समस्त फल तोड़ लेंगे तो अगले वर्ष पौधों का पुनरूत्पादन प्रभावित होगा।

बायविडंग

बायविडंग एक झाड़ीनुमा पौधा होता है। छत्तीसगढ़ के वनों में यह प्रजाति पाई जाती है। इसके बीजों का उपयोग कृमिनाशक औषधि बनाने में होता है। इसका बाजार में बिकने वाला भाग इसके फल होते हैं। अतः फलों का विदोहन करते समय हमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिएः

(1) बायविडंग के पके हुए फल ही तोड़ना चाहिए। पकने पर फल लाल रंग के हो जाते हैं। अतः जब फल हल्के लाल रंग के होने लगे तब इन्हें तोड़ लेना चाहिए।

(2) फलों को हाथ से तोड़कर एकत्र करना चाहिए, न कि शाखाएं काटकर। प्रायः ग्रामवासी बायविडंग के फलों को इकट्ठा करते समय इसकी टहनियों को तोड़/काट देते हैं। इस प्रक्रिया से इसका उत्पादन व प्रजनन प्रभावित होता है।

(3) फलों को तोड़कर छाया में सुखाकर जूट या कपड़े के बोरों में संग्रहित करना चाहिए।

(4) पके फल तोड़ते समय लगभग 10 प्रतिशत फल पेड़ पर पुनरूत्पादन हेतु छोड़ देना चाहिए।

सर्पगन्धा

सर्पगन्धा की जड़ों का विनाशविहीन विदोहन करते समय हमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिएः

(1) सर्पगन्धा की जड़ों को दिसम्बर – जनवरी माह में जमीन से खोदकर निकालना चाहिए। जड़ों की खुदाई करने से पहले खेत में सिंचाई कर देनी चाहिए, जिससे जड़ निकालने में असुविधा न हो। जड़ों की खुदाई करते समय, जड़ का कुछ हिस्सा जमीन के अन्दर छोड़ देना चाहिए, जिससे कि अनुकूल परिस्थितियां मिलने पर पुनरूत्पादन हो सके।

(2) सर्पगन्धा के पके हुए फल जो काले रंग के होते हैं, को एकत्र कर लेना चाहिए। इन फलों को मसलकर इनका गूदा अलग कर बीज पानी से अच्छी प्रकार धोकर व सुखाकर अगली फसल के लिए भण्डारित करना चाहिए। इन बीजों का उपयोग अगले वर्ष वन क्षेत्रों में रोपण कर किया जा सकता है।

बहेड़ा

बहेड़ा एक बहुउपयोगी औषधीय वृक्ष है। इसके फलों का उपयोग विभिन्न औषधियां बनाने हेतु किया जाता है। इसके फलों को एकत्रित करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिएः

(1) फलों को पकने के बाद ही पेड़ से तोड़ना चाहिए।

(2) फलों को एकत्रित करने से पहले पेड़ के नीचे के स्थल की सफाई कर लेनी चाहिए। जिससे कि फल भूमि पर गिरकर मिट्टी व अन्य गंदगी के साथ सम्पर्क में न आये।

(3) फलों को तोड़ने से पूर्व यदि सम्भव हो तो जमीन पर कोई टाटपट्टी इत्यादि बिछा लेनी चाहिए।

(4) फलों को एकत्रित करते समय कुछ फल (लगभग 10 प्रतिशत) पेड़ पर पुनरूत्पादन हेतु छोड़ देने चाहिए।

(5) फलों को छाया में अच्छी प्रकार सुखाकर बोरों में भण्डारित करना चाहिए।

अर्जुन

अर्जुन एक ऐसा वृक्ष है जो नदी–नालों व पानी के स्रोतों के साथ उगा हुआ देखा जाता है। छत्तीसगढ़ के वनों में यह बहुतायत से पाया जाता है। इसकी छाल का उपयोग हृदय रोग संबंधी बीमारियों के निदान में उपयोग में आने वाली औषधियों के निर्माण में किया जाता है। इसके विनाशविहीन विदोहन हेतु, इसकी छाल निकालने हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिएः

(1) 60 से.मी. से कम गोलाई वाले वृक्षों से छाल नहीं निकालनी चाहिए।

(2) छाल निकालते समय पौधे की गोलाई की 1/4 भाग में ही कट लगाकर छाल एकत्र करनी चाहिए।

(3) छाल पौधों के तने के भूमि के बिल्कुल पास वाले हिस्से से नहीं निकालना चाहिए।

(4) तने के जिस भाग से एक बार छाल निकाली गई हो, उस स्थान पर कम से कम 2 वर्ष तक छाल नहीं निकालनी चाहिए।

(5) छाल को निकालने के पश्चात् अच्छी प्रकार सुखाकर बोरों में भण्डारित करना चाहिए।

मैदा छाल

मैदा के वृक्ष छत्तीसगढ़ राज्य के वनों में बहुतायत से पाये जाते थे, परन्तु इसकी छाल के अवैज्ञानिक व विनाश विदोहन से इस पेड़ की उपलब्धता में अप्रत्याशित रूप से कमी हुई है। इसकी छाल का उपयोग अगरबत्ती बनाने हेतु किया जाता है। चूँकि यह वृक्ष वनों में अप्रत्याशित रूप से कम हो गया है, अतः जहाँ तक सम्भव हो हमें इसकी छाल का विदोहन नहीं करना चाहिए। फिर भी यदि किन्ही कारणोवश विदोहन करना ही पड़े तो हमें 60 से.मी. से अधिक गोलाई वाले वृक्षों से उपयुक्त विधि द्वारा विदोहन करना चाहिए।

सतावर

सतावर की जड़ों का विनाशविहीन विदोहन करते समय हमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

(1) सतावर की कंदिल जड़ों को दिसम्बर–जनवरी माह में जमीन से खोदकर निकालना चाहिए। सतावर की जड़ों की खुदाई पौधे से एक डेढ़ फीट की दूरी से खोद कर करनी चाहिए। जड़ों को हाथ/खुरपी या हंसिया से काट कर विदोहन करना चाहिए। खुदाई करते समय कुछ कंदिल जड़ें (4 से 8) जमीन के अन्दर छोड़ देनी चाहिए तथा उसके ऊपर से मिट्टी ढ़क देनी चाहिए जिससे कि अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने पर पुनरूत्पादन हो सके।

(2) सतावार के पके हुए फल जो काले रंग के होते हैं को एकत्र कर लेना चाहिए। इन फलों को मसलकर इनका चिपचिपा काला छिलका अलग कर बीज पानी से अच्छी प्रकार धोकर व सुखाकर अगली फसल के लिए भण्डारित करना चाहिए। इन बीजों का उपयोग अगले वर्ष वन क्षेत्रों में रोपण हेतु किया जा सकता है।

ये हुस्नों–इश्क ही का काम है, शुबहा करें किस पर
मिजाज उनका नहीं मिलता, हमारा दिल नहीं मिलता।

–'अकबर' इलाहाबादी

खनन क्षेत्रों में झाड़ियों की उपयोगिता

ओम कुमार एवं हर्षवर्द्धन वशिष्ट
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

खनन क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण एवं स्थानीय निवासियों की जरूरतों का आकलन करते हुए यह आवश्यक है कि खनन प्रक्रिया के साथ–साथ विकृत भूमि में पुनर्वास का कार्य भी किया जाए जिससे उस क्षेत्र की उपयोगिता को मध्य नजर रखते हुए ऐसी झाड़ियों का रोपण किया जाये जो एक ओर उस क्षेत्र का पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में उपयोगी साबित हो तथा दूसरे स्थानीय निवासियों की आवश्यक जरूरतों जैसे– लकड़ी, चारा आदि की मांग को भी पूरा करे। दून–मसूरी क्षेत्र में खनन के कारण 6719.81 हैक्टेयर भूमि प्रभावित हुई और स्थानीय निवासियों का जीवन भी समस्याओं से ग्रसित होता गया। इस क्षेत्र में 105 छोटे–बड़ी खनन इकाईयाँ कार्यरत थी और अधिकांश क्षेत्र हरे–भरे सघन वनों द्वारा आच्छादित थे और ये वन ही यहाँ की उत्तम जलवायु के कारण थे। इन क्षेत्रों में वनों से उत्पन्न जलस्रोत ही यहाँ की सुन्दरता बढ़ाते थे।

खनन से पहाड़ी क्षेत्र में स्थानीय लोगों की दैनिक जरूरतें जैसे जलाऊ लकड़ी, चारा, व पानी के स्रोत की कमी आती गयी। आवश्यकता इस बात की है कि कैसे कम से कम समय में पर्यावरण संरक्षण का कार्य किया जाए ताकि खनन क्षेत्रों में पुनः हरियाली छा जाए और स्थानीय लोगों को दैनिक आवश्यकता के अनुरूप चारा, रेशे, जलाऊ लकड़ी आदि उपलब्ध हो सके। इस लेख में यह प्रयास किया गया है कि इन मसूरी खनन क्षेत्रों में पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए विभिन्न खनन इकाइयों में स्थान की ऊँचाई के आधार पर कौन–कौन सी झाड़ियाँ उगाई जा सकती हैं। उनका विवरण तालिका 3 क, ख, ग व तालिका 4 क, ख, ग में दिया गया है।

तालिका–1. मसूरी क्षेत्र में विद्यमान खनन क्षेत्रों का विवरण

क्र.सं.	खनिज	खनन क्षेत्र संख्या	खनन से प्रभावित क्षेत्र हैक्टेयर में
1.	चूना पत्थर	100	6415.25
2.	फास्फेट	3	295.25
3.	जिप्सम	1	8.50
4.	डोलोमाइट	1	0.81
	कुल	**105**	**6719.81**

तालिका–2. मसूरी क्षेत्र में विद्यमान खनन क्षेत्रों का ब्लाक वाइज विवरण

क्र.सं.	ब्लाक का नाम	खनन क्षेत्र संख्या	खनन से प्रभावित क्षेत्र हैक्टेयर में
1.	वनोग व दून घाटी	11	172.76
2.	भितराली	16	287.93
3.	क्यारकुली	10	58.75
4.	अमीगाद	9	122.01
5.	सहस्त्रधारा	11	230.09
6.	मालदेवता	8	158.72
7.	सांग घाटी	20	238.43
8.	मिश्रित	20	5451.12
	कुल	**105**	**6719.81**

तालिका–3. फास्फेट खनन क्षेत्रों के पुनर्वास में उपयुक्त झाड़ियाँ

(क) स्थान ऊँचाई 700–1200 एम.एस.एल.

झाड़ियाँ	प्रवर्धन विधि	उपयोग
ससिल *(एगेव सिसलाना)*	क्लो	रेशे, भूक्षरण रोकने में
सिमालू *(वाइटेक्स निगुन्ड़ो)*	कलम	जलाऊ लकड़ी, भूक्षरण रोकने में
बेशर्म *(आइपोमोइया कारनिया)*	कलम	भूक्षरण रोकने में
अलय *(माइमोसा हिमालयाना)*	बीज	जलाऊ लकड़ी, मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
चुलमोरा *(रयूमेक्स हेस्टेटस)*	बीज	भूक्षरण रोकने तथा पत्तियाँ खाने में,
सन्नी *(क्रोटेलेरिया सेरीसिया)*	बीज	मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
प्रधिया *(वुडलेजा एसियारिका)*	बीज, पौधे, कलम	जलाऊ लकड़ी, सजावट के लियेभूक्षरण रोकने में

(ख) स्थान ऊँचाई 5000–7000 एम.एस.एल.

झाड़ियाँ	प्रवर्धन विधि	उपयोग
मसूरा *(कोरेरिया नैपालेन्सिस)*	बीज, कलम	भूक्षरण रोकने में
तुसियारी *(डेब्रीजेसिया हाइपोल्यूका)*	बीज, कलम	चारा, जलाऊ लकड़ी, भूक्षरण रोकने में
चुलमोरा *(रयूमेक्स हेस्टेटस)*	बीज	भूक्षरण रोकने तथा पत्तियाँ खाने में

तालिका–4. चूना पत्थर खनन क्षेत्र के पुनर्वास में उपयुक्त झाड़ियाँ

(क) स्थान ऊँचाई 1000–3000 एम.एस.एल.

झाड़ियाँ	प्रवर्धन विधि	उपयोग
ससिल *(एगेव सिसलाना)*	कल्लो	रेशे, भूक्षरण रोकने में
दूधिया *(बुड़लेजा एसियाटिका)*	बीज, पौधे, कलम	जलाऊ लकड़ी, दवाई, सजावट के लिए, भूक्षरण रोकने में
सन्नी *(क्रोटेलेरिया सेरीसिया)*	बीज	मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
विलायती मेहंदी *(डोडोनिया विस्कोसा)*	बीज, पौधे	भूक्षरण रोकने में
अलय *(माइमोसा हिमालयाना)*	बीज	जलाऊ लकड़ी, मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
चुलमोरा *(रयूमेक्स हेस्टेटस)*	बीज	भूक्षरण रोकने तथा पत्तियाँ खाने में,
सिमालू *(वाइटेक्स निगुन्डा)*	कलम	जलाऊ लकड़ी, भूक्षरण रोकने में

(ख) स्थान ऊँचाई 3000–5000 एम.एस.एल.

झाड़ियाँ	प्रवर्धन विधि	उपयोग
ससिल *(एगेव सिसलाना)*	कल्लो	रेशे, भूक्षरण रोकने में
दूधिया *(बुड़लेजा एसियाटिका)*	बीज, पौधे, कलम	जलाऊ लकड़ी,, सजावट के लिए, भूक्षरण रोकने में
सन्नी *(क्रोटेलेरिया सेरीसिया)*	बीज	मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
तुसियारी *(डेब्रीजेसिया हाइपोल्यूका)*	बीज, कलम	चारा, जलाऊ लकड़ी, भूक्षरण रोकने में
विलायती मेहंदी *(डोडोनिया विस्कोसा)*	बीज, पौधे	भूक्षरण रोकने में
अलय *(माइमोसा हिमालयाना)*	बीज	जलाऊ लकड़ी, मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
चुलमोरा *(रयूमेक्स हेस्टेटस)*	बीज	भूक्षरण रोकने तथा पत्तीयाँ खाने में,
सिमालू *(वाइटेक्स निगुन्डो)*	कलम	जलाऊ लकड़ी, भूक्षरण रोकने में
धाउला *(वुडफोरडिया फ्रूटीकोसा)*	कलम	जलाऊ लकड़ी, चारा, भूक्षरण रोकने में
मसूरा *(कोरेरिया नैपालेन्सिस)*	बीज, कलम	भूक्षरण रोकने में

(ग) स्थान ऊँचाई 5000–7000 एम.एस.एल.

झाड़ियाँ	प्रवर्धन विधि	उपयोग
सीसल *(एगेव सिसलाना)*	कल्लो	रेशे, भूक्षरण रोकने में
किरमोरा *(बरबेरिस एरिसटाटा)*	बीज	दवाई, भूक्षरण रोकने में
मसूरा *(कोरेरिया नैपालेन्सिस)*	बीज	भूक्षरण रोकने में
तुसियारी *(डेब्रीजेसिया हाइपोल्यूका)*	बीज, कलम	चारा, जलाऊ लकड़ी, भूक्षरण रोकने में
डेसमोडियम जाति	बीज	भूक्षरण रोकने में तथ मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
हाइपेरिकम पेटूलम	बीज	सजावट, भूक्षरण रोकने में
लेसपीडीजा जीरारडियाना	बीज	भूक्षरण रोकने में तथा मिट्टी की उर्वरक्ता बड़ाने में
सेलिक्स जाति	कलम	चारा, भूक्षरण रोकने में

खनन द्वारा विकृत हुई भूमि में पौधों का रोपण करना यद्यपि कुछ कठिन जरूर है किन्तु जलवायु एवं भूमि में विद्यमान तत्वों का सही विश्लेषण के आधार पर उपयुक्त झाड़ियों का रोपण करके खनन क्षेत्रों के पुनर्वास के कार्य को अति सुगमता से किया जा सकता है जिसका सही उदाहरण दून–मसूरी क्षेत्र की विकृत भूमि में किये गये पुनर्वास के प्रयोग द्वारा आंका जा सकता है।

फेर लेते हैं नजर दिल से भुला देते हैं,
क्या यूँ ही लोग वफाओं का सिला देते हैं

–रुबीना यास्मीन

वानिकी अनुसंधान में सांख्यिकी : विकास, योगदान व महत्व

अनूप चौहान
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

भारत में वन नीति के आरम्भ होने (1855) के साथ ही सांख्यिकी का उपयोग शुरू हो गया था। इससे पूर्व भारतीय वनों का मनमाना दोहन हो रहा था। वन कृषि भूमि के लिए काटे जा रहे थे। स्वार्थवशः उन्हें अक्षय मान लिया गया था। इसी दौर में आई औद्योगिक क्रांति व उसके प्रभाव से थोड़े से सम्पन्न वर्ग के पनपने पर प्राकृतिक संसाधनों, विशेषतः वनों, का और अधिक दोहन होने लगा। इसी दौरान 1861 में भारतीय वन विभाग की स्थापना हुई। विभाग ने अपने प्रारम्भिक दौर में वनों का अधिग्रहण कर उनका आकलन किया और अपने विभाग का पूरे देश में विस्तार किया। वन व वन–उपज से होने वाली आय–व्यय एवम् विस्तृत भारत की वन सम्पदा का आकलन करने में सांख्यिकी का विकास हुआ। भारतीय वन विभाग के प्रथम महा–निरीक्षक डी.ब्रांडिस (1864) व उनके सहयोगियों ने सम्पूर्ण भारत के वनों से संबन्धित रिपोर्टें तैयार की, जो वनों से जुडे आंकडों से पूर्ण थी। इन आंकडों के आधार पर भारतीय वनों की दशा का भान हुआ और ब्रांडिस भारतीय वनों को नई दिशा देने में सक्षम हुए। सांख्यिकी की उपयोगिता को ध्यान में रख 1872 में भारतीय वन सर्वेक्षण की स्थापना हुई जिसका प्रमुख कार्य भारतीय वनों का विस्तृत ब्यौरा तैयार करना था।

इसी दौर की एक महत्वपूर्ण घटना थी, भारतीय रेल का विस्तार। 1850 के उत्तरार्ध से 1910 तक भारत में 51,650 किमी. रेलवे पटरियां बिछाई गई। इस विशाल रेलवे जाल को बिछाने के लिए भारतीय वनों से उपलब्ध काष्ठ का आकलन किया गया। गणना से यह पाया गया कि 2 किमी. पटरी बिछाने के लिए लगभग 900 स्लीपरों की आवश्यकता होती है। इसके लिए मुख्यतः तीन वन प्रजातियों – साल, देवदार व सागवान का उपयोग किया गया। भारतीय वन इतनी अधिक मात्रा में यह आपूर्ति नहीं कर सकते थे, इसलिए विदेशों से स्लीपरों का आयात किया गया। प्रारम्भिक आंकड़ों के आधार पर वन प्रबंधन व निर्णय लेने में सहायता मिली। इन आंकड़ों के परिपेक्ष में यह पाया गया कि भारतीय वन तेजी से संकुचित हो रहे हैं और यदि वनों के प्रति यही उदासीनता बनी रही तो इसके गंभीर परिणाम होंगे। फलस्वरूप वनों के संरक्षण का विचार आया और पूरे देश में संरक्षित वनों की स्थापना हुई। काष्ठ की बढ़ती मांग के कारण वनों पर पड़ते दबावों ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि मानव–निर्मित वनों का विकास किया जाए व वन संर्वधन द्वारा वनों की उत्पादकता को बढ़ाया जाए। इस कारण वन संवर्धन को प्राथमिकता देते हुए इस विषय पर अनेक शोध किए गये। ब्रांडिस ने अपने बर्मा प्रवास के दौरान सागवान पर अनेक प्रयोग किए जो सांख्यिकीय प्रकृति के थे, जैसे इसकी सघनता मापना, उगने की दर व उपयोग में लाए जा सकने लायक वन की मात्रा आदि। यह अनुसंधान सांख्यिकी की अधिक जानकारी न होने के कारण यहीं तक सीमित रहा। किन्तु वनों से जुड़े अन्य पहलुओं पर आंकड़ों का संकलन होता रहा। आंकड़ों के प्रति इस निष्ठा से भारतीय वनों पर कालान्तर में उपयोगी ठोस जानकारी का आधार तैयार हो सका। इन आंकड़ों से कुछ रोचक तथ्य भी सामने आये जो सामान्य अवलोकन में लोप ही रहते हैं। संकलित आंकड़ों के विश्लेषण से यह पाया गया कि वन विभाग पर व्यय बढ़ाने पर वनों से होने वाले राजस्व में भारी वृद्धि हुई है। इसी से उत्साहित होकर वन अनुसंधान को प्रमुखता मिली और इसका विकास होता चला गया।

सांख्यिकी के उपयोग व आवश्यकता का प्रमुख आधार यह बना कि वनों के विस्तार व उनकी दुरूहता के

कारण यह संभव नहीं कि हम समग्र वनों तक पहुंच कर आसानी से उनके विषय में जानकारी ले सकें। इस कारण हम इन विषयों पर नमूने लेकर सांख्यिकी में उपलब्ध विधियों द्वारा सम्पूर्ण जानकारी पा सकते हैं। यह कार्य अधिक शुद्धता, अल्प समय व कम खर्च में किया जा सकता है। वन अनुसंधान संस्थान के प्रमुख वन संवर्धक एच. जी. चैंपियन (1931) ने पहली बार अनुसंधान के प्रयोगों के विश्लेषण की विधियों को एक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया। विश्व स्तर पर सांख्यिकी का विकास जुड़े अनुसंधान में सांख्यिकी विधियों का विकास कर रह थे। कृषि से जुड़े प्रयोगों की अवधि कम होती है इसलिए नतीजे शीघ्र ही मिल जाते है। इसके अतिरिक्त कृषि के प्रयोगों में विषमताएं कम होती हैं इसलिए त्रुटियां कम ही होती है। इसके विपरीत वनों का जीवन काल दीर्घ होता है तथा अधिक विषमताओं के कारण त्रुटियां होने की सम्भावना अधिक रहती है। इस कारण वन अनुसंधान में सांख्यिकी का विकास अपेक्षाकृत धीमे हुआ।

भारत में सांख्यिकी के विकास को गति तब मिली जब 1931 में सांख्यिकी विशेषज्ञ पी.सी. महलनोविस ने कलकत्ता में भारतीय सांख्यिकी संस्थान की स्थापना की। भारतीय वन अनुसंधान संस्थान ने भी अपने दो वन सर्वधकों को (1934–39) वहां प्रशिक्षण के लिए भेजा। वन अनुसंधान संस्थान के अध्यक्ष के निमंत्रण पर 1940 में पी.सी महलनोविस देहरादून आए और उन्होंने यहां एक कुशल सांख्यिकी विशेषज्ञ की नियुक्ति को बल दिया। दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद पहली अगस्त 1947 को वन अनुसंधान संस्थान में सांख्यिकीय शाखा की स्थापना हुई। उसी वर्ष अक्टूबर में के.आर. नायर, जो भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता में कार्यरत थे, ने इस शाखा के प्रमुख का पद संभाला। तब इस शाखा का उद्देश्य संस्थान की अन्य शाखाओं में हो रहे प्रयोगों की रूप–रेखा तैयार करना तथा उनमें उत्सर्जित आंकड़ों का विश्लेषण करना था। इसके अतिरिक्त शाखा में देश भर से आए वन संवर्धन संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण भी होता था। इससे पूर्व ए.एल.ग्रिफिथ ने भारत के विभिन्न भागों से आए आंकड़ों के आधार पर काष्ठ के घनत्व को जानने की विधियों का विकास किया।

सांख्यिकी का महत्व वन संवर्धन सम्मेलनों में भी रेखांकित होता रहा। छठे वन संवर्धन सम्मेलन (1945) में भारत की वन संपदा के आकलन व युद्ध के कारण अतिरिक्त वनादोहन की मात्रा को नापने पर वार्ता हुई तथा इस बात पर भी चर्चा हुई कि वनों से नमूने किस प्रकार व कितनी मात्रा में लिए जाएं जिससे सम्पूर्ण वनों का सटीक आंकलन हो सके।

आठवें वन संर्वधन सम्मेलन (1951) में मुख्य अतिथि प्रसिद्ध सांख्यिकी विशेषज्ञ डॉ. येटस ने वनों से नमूने लेने की विधियों पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। के.आर. नायर ने वन अनुसंधान में सांख्यिकी के योगदान को अंर्तराष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाया। उन्होंने छठें राष्ट्रमण्डल वानिकी सम्मेलन, कनाडा (1952) व चौथे विश्व वानिकी सम्मेलन, देहारादून, भारत (1954) में भाग लिया और अपने पत्र पढ़े। गणना करने के यंत्रो के विकास के साथ सांख्यिकी की उपयोगिता में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई। वन अनुसंधान संस्थान की अन्य शाखाओं, प्रयोगशालाओं के भीतर व बाहर, जहां भी अनुसंधान के प्रयोगों में आंकड़ों का उत्सर्जन होता था, सांख्यिकी का सहज उपयोग होने लगा। सांख्यिकी सोच से आंकड़ों को एकत्रित करने व विश्लेषण में मदद मिलती है और यह हमारे संशयका दूर करती है। शोध पत्रों व अन्य वैज्ञानिक रूचि की रपटों में आंकड़ों का प्रकाशन व विश्लेषण एक आवश्यकता बन गया।

के. आर. नायर वन अनुसंधान संस्थान में सांख्यिकी को मजबूत आधार देने के बाद 1960 में केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन में चले गये। उनके कार्य को वी.जे. चाको ने दक्षता से आगे बढ़ाया। उन्होंने 'वन नमूने व वन सर्वेक्षण' पर एक उपयोगी पुस्तक लिखी। सांख्यिकी शाखा ने अपने दायित्व को आने वाले वर्षों में भली–भांति निभाया। भारतीय वन अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के गठन होने तक यहां शाखा लगभग 3000 अनुसंधान प्रयोगों का, जो कि संस्थान की विभिन्न शाखाओं द्वारा किये गये थे, विश्लेषण कर चुकी थी। वर्तमान में सांख्यिकी बहुत विकास कर चुकी है। इसका श्रेय कम्प्यूटरों व 'सांख्यिकीय पैकेजों की उपलब्धता को जाता है। पहले गणनाएं स्वतः या गणकों से की जाती थी। दुरूह गणनाएं या तो संभव ही

न थी या उनमें त्रुटियों की संभावना रहती थी। परन्तु अब अल्प समय में जटिल गणनाएं बिना त्रुटि के करना संभव है। इस कारण पिछले तीन दशकों में सांख्यिकी का विस्तार व विकास बहुत तेजी से हुआ।

वानिकी के विकास व वन अनुसंधान के नये विकसित होते क्षेत्रों में सांख्यिकी ने अपनी अनिवार्यता बनाए रखी है। जलवायु परिवर्तन, जैवविविधता व पर्यावरण पर होने वाले प्रभावों का आंकलन, पारिस्थितिकी आदि ऐसे विषय है जहां प्राप्त आंकड़ों की विविधता व मात्रा इतनी अधिक होती है कि बिना उच्च सांख्यिकीय ज्ञान व कम्प्यूटर की मदद से कोई विश्लेषण नहीं हो सकता। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित होने वाले शोध पत्रों में यथेष्ट सांख्यिकीय विश्लेषण अपेक्षित है।

वनों से जुड़े दो प्रमुख विषयों पारिस्थितिकी व पर्यावरण पर पिछले 40 वर्षों में अनेक अध्ययन व शोध हुए हैं। दोनों ही विषयों में सांख्यिकी का इतना अधिक योगदान रहा है कि सांख्यिकीय पारिस्थितिकी व सांख्यिकी पर्यावरण अलग विषय में परिर्वतित हो गये हैं। यद्यपि यह दोनों नये विषय है किन्तु इन्होंने अपनी अलग विधियां विकसित कर ली है। कहा जा सकता है कि वानिकी शोध में सांख्यिकी के उपयोग से उसे अधिक ज्ञान वर्धक व वस्तुपरक बनाया जा सकता है।

— एक —

मुसलमान और हिंदू हैं दो एक मगर उनका प्याला,
एक मगर उनका मदिरालय एक मगर उनकी हाला;
दोनों रहते एक न जब तक मस्जिद–मन्दिर में जाते
बैर बढ़ाते मस्जिद–मन्दिर, मेल कराती मधुशाला।

— दो —

कभी नहीं सुन पड़ता, इसने, हा छू दी मेरी हाला;
कभी न कोई कहता, उसने जूठा कर डाला प्याला;
सभी जाति के लोग यहाँ पर साथ बैठकर पीते हैं,
सौ सुधारकों का करती है काम अकेली मधुशाला।

— डॉ. हरिवंश राय 'बच्चन'

राजस्थान के महत्वपूर्ण अकाष्ठ वनोपज एवं ग्रामीण जीवन में उनकी महत्ता

श्रीमती संगीता त्रिपाठी, डॉ. रंजना आर्या एवं राजेश गुप्ता
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

वन और जन का सदियों से अटूट रिश्ता रहा है, न केवल इसलिए कि वन पर्यावरण संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, बल्कि इसलिए भी कि वनों से हमें अनेक उत्पाद प्राप्त होते हैं, जिनमें अकाष्ठ वनोपजों का महत्वपूर्ण स्थान है। राज्य वन विभाग, प्रशासनिक प्रतिवेदन 2007–08 के अनुसार वर्तमान में राज्य में ग्राम वन सुरक्षा समितियाँ गठित हैं जो अनुमानतः 779322.1 हैक्टेयर क्षेत्र का प्रबंधन कर रही हैं। उपलब्ध आँकड़ों से यह प्रमाणित होता है कि प्रबंधित क्षेत्रों से प्राप्त होने वाली घास व अन्य अकाष्ठ वनोपज वन सुरक्षा समिति के द्वारा स्थानीय जन समुदाय / ग्रामीणों को निःशुल्क उपलब्ध करवाई जाती है, जिससे वनोपज का समुचित प्रबंधन होने के साथ–साथ ग्रामीणों को वनों की सुरक्षा व प्रबंध के बदले में कुछ आय भी प्राप्त हो जाती है। इसके अलावा राजस्थान में जहाँ कि 61 प्रतिशत भाग मरु प्रदेश है, लघु वन उपज का राज्य के सकल घरेलू उत्पादन में योगदान इस प्रकार है :

क्र.सं.	घटक	योगदान (लाख रुपये में)
1	ईंधन	22100.00
2	चारा	126750.00
3	इमारती लकड़ी	16800.00
4	लघु वन उपज	5200.00
	योग	170850.00

(स्रोतः राज्य वन विभाग, प्रशासनिक प्रतिवेदन 2007–08)

भारत में लगभग 200–300 मिलियन ग्रामीण समुदाय वनोपजों पर आश्रित रहता है। राज्य का अधिकांश भूभाग मरुस्थल होने के उपरांत भी जैव विविधता की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है। राजस्थान में मुख्यतः निम्न अकाष्ठ वनोपज प्राप्त होते हैं:

- वनोषधियाँ
- घास
- गोंद एवं रेजिन
- तेल
- तेंदू पत्ता
- टेनिन
- शहद मोम
- फल–फूल
- चारा
- डाई

अधिकांशतः अकाष्ठ वनोपज दक्षिण–पश्चिम तथा उत्तर–पूर्व में गुजरात से हरियाणा होकर दिल्ली तक फैली हुई अरावली पर्वत श्रृंखलाओं से प्राप्त होते हैं। राजस्थान में प्राप्त होने वाले कुछ अकाष्ठ वनोपजों का विवरण इस प्रकार है।

फल–फूल व अन्य उत्पादः अनेक महत्वपूर्ण फल–फूल व अन्य उत्पाद जिनका राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान हैं, इस प्रकार हैं:

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	खाद्य अंग	उपयोग
1.	*प्रोसोपिस सिनेरेरिया* (खेजड़ी)	फलियाँ	स्थानीय भाषा में 'सांगरी' कहते हैं। पंचकुटा की सब्जी का प्रमुख अवयव। 35–40 वर्ष की आयु के वृक्ष से 5 कि.ग्रा. सूखी फलियाँ प्राप्त होती हैं। बाजार भाव अनुमानतः रु. 150–200 / – प्रति किलो। कच्ची फलियों की भी सब्जी बनाई जाती है।

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	खाद्य अंग	उपयोग
2.	*कैपेरस डेसीडुआ* (कैर)	फल	सूखे फल पंचकुटा की सब्जी का प्रमुख अवयव, कच्चे फलों का अचार बनाते हैं।
3.	*अकेशिया सेनेगल* (कुमट)	फलियाँ व बीज	कच्ची फलियों की भी सब्जी बनाई जाती है। उबाल कर सुखाए हुए बीज पंचकुटा की सब्जी का प्रमुख अवयव।
4.	*एजल मार्मिलोस* (बेल)	फल	कच्चे फल से मुरब्बा तथा पके फल से शरबत एवं जैम बनाया जाता है।
5.	*बैलेनाईटिस एजिप्टका* (हिंगोटा)	फल, कोपलें व पत्तियाँ	पके फलों का मिठाई व मुरब्बा बनाने में उपयोग, कोंपलों व पत्तियों का सब्जी व सूप के तौर पर उपयोग।
6.	*कैलीगोनम पॉलीगोनोइडिस* (फोग)	कलियाँ	कलियों का रायता बनाते हैं और तल कर भी खाते हैं।
7.	*कॉर्डिया डाइकोटोमा* (लसोड़ा)	फल	कच्चे फलों की सब्जी व अचार बनाते हैं।
8.	*सल्वाडोरा ऑलीओईडिस*	(मीठा जल)	फल स्थानीय भाषा में 'पीलू' कहते हैं। पके फलों को खाते हैं व शरबत भी बनाते हैं।
9.	*जिजिफस मारिशिआना* (बेर)	फल	पके फल खाये जाते हैं। इनसे शरबत, जैम, कैंडी आदि भी बनाते हैं।
10.	*कैरिसा कैरेन्डस* (करोंदा)	फल	पके फलों की सब्जी, अचार, चटनी व मुरब्बा बनाया जाता है।
11.	*एनोना स्क्वेमोसा* (सीताफल)	फल	फल खाए जाते हैं।
12.	*साइजिजियम कम्यूनि* (जामुन)	फल	फल खाए जाते हैं।
13.	*एम्बलिका आफीसिनेलिस* (आँवला)	फल	पके फलों का अचार, चटनी व मुरब्बा बनाया जाता है।
14.	*मोमोर्डिका डायोइका* (किंकोड़ा)	फल	फल खाए जाते हैं।

तेंदू पत्ता

यह तेंदू वृक्ष *डायोस्पाइरोज मैलेनोजाईलोन* से मिलता है एवं बीड़ी बनाने के काम आता है। यह राजस्थान की महत्वपूर्ण लघु वन उपज है जिसका ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।राज्य वन विभाग, प्रशासनिक प्रतिवेदन 2007–08 के अनुसार सन् 2007 में इसके विक्रय से अनुमानतः 1506.45 लाख रुपये की शुद्ध आय प्राप्त हुई थी। यह राज्य के दक्षिण पूर्वी जिलों :

सांगरी

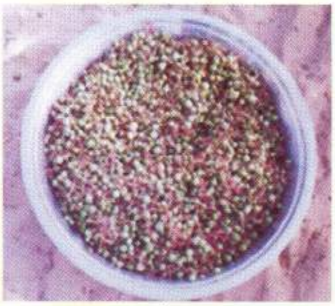

कैरा

कुमट

पंचकुटा की सब्जी के महत्वपूर्ण अवयव

उदयपुर, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, चित्तौड़गढ़ व बारां में बहुतायत से एवं पाली, धौलपुर, सिरोही, अलवर, कोटा, बूंदी, भीलवाड़ा में भी मिलता है। बीड़ी बनाने के लिए हरी पत्तियाँ जिनकी शिराएँ मोटी नहीं होती हैं, का संग्रहण अप्रैल–जून माह तक किया जाता है। पत्तियों को संग्रहित करते समय 50–50 पत्तियों की गड्डी बनाकर 1000 गड्डीयों को एक बोरे में भरा जाता है। इसका संग्रहण व विपणन राजस्थान तेंदू पत्ता अधिनियम, 1974 के अंतर्गत किया जाता है।

तेल

राजस्थान में पाई जाने वृक्ष प्रजातियाँ जिनसे तेल प्राप्त होता है, इस प्रकार हैं:

क्र. सं.	वानस्पतिक नाम	तेल की मात्रा	तेल के उपयोग
1.	*अजैडिरैक्टा इण्डिका* नीम	40%	भूरे–पीले रंग का तेल ट्रेड नाम–'मार्गोसा आइल', अन्य वसा अम्लों के साथ मिलाकर साबुन बनाने में उपयोग, त्वचा संबंधी रोगों में दवा के रुप में एवं ग्रामीण क्षेत्रों में दीपक जलाने में (as illuminant).
2.	*बैलेनाईटिस एजिप्टका* (हिंगोटा)	36%	जीवाणुनाशी, कवकनाशी गुणोंयुक्त यह तेल त्वचा संबंधी विकारों, जलन (हिंगोटा) पर, चर्म विदारण (excoriation) में एवं चित्ती पड़ने पर (freckles) तथा साबुन निर्माण में।
3.	*सिट्रूलस कोलोसिंथिस* (थुम्बा)	17–19%	साबुन निर्माण में।
4.	*सल्वाडोरा ऑलिऑइडिस* एवं *स. पर्सिका* (मीठा एवं खारा जल)	42.43%	साबुन बनाने एवं रंगने में नारियल के तेल का प्रतिस्थापक (substitute), स्थानीय निवासियों द्वारा आमवात व गठिया रोग के निवारण में औषधी के रुप में प्रयुक्त।
5.	*सिट्रूलस लेनेटस* (मतीरा)	20.40%	खाद्य तेल एवं अकाल पड़ने पर मूँगफली एवं अन्य खाद्य तेलों के स्थान पर काम में लिया जाता है।
6.	*पोंगेमिया पिनाटा* (करंज)		कीटाणुनाशी एवं जीवाणुनाशी गुणों से युक्त तेल का उपयोग चमड़ा रंगने में, कपड़े धोने के साबुन तथा मोमबत्ती में होता है।
7.	*मधुका लोंगिफोलिया* (महुआ)		साबुन निर्माण, ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य तेल के रुप में, मोमबत्ती बनाने में, त्वचा रोगों, आमवात व सिरदर्द में।
8.	*कार्थेमस आक्सीकैन्था* (छोटी कटेरी)		खाद्य तेल के रुप में एवं दीपक जलाने में।

सिट्रूलस कोलोसिंथिस

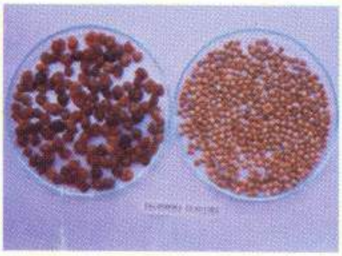
एस. ओलीऑईडिस

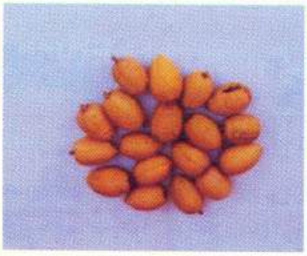
बैलेनाईटिस एजिप्टका

पोंगेमिया पिनाटा

राजस्थान की तेल उत्पादन प्रजातियाँ

घास प्रजातियाँ

राजस्थान में पाई जाने घास प्रजातियॉ जिनसे तेल प्राप्त होता है, इस प्रकार हैं:

क्र. सं.	वानस्पतिक नाम	तेल की मात्रा	तेल के उपयोग
1.	*सिम्बोपोगोन मार्शिनी*	0.3%	प्रतिजैविक Antiseptic एवं जीवाणुनाशी, सौंदर्य प्रसाधनों में, साबुन (रोशा घास) को सुगंधित करने में, तम्बाकू को सुवासकारी (flavouring) बनाने में,लू एवं तेज बुखार से राहत पाने हेतु (relieve the discomforts of flu and a high temperature) चुदन के तेल के साथ मिलाकर मच्छर प्रतिकर्षी के रुप में तथा हाथी पॉव, जोड़ों के दर्द, त्वचा रोगों के उपचार और पित्त विकारों का शमन में।
2.	*सिप्रस रोटन्डस* (खल / मोथा)	-----	इत्र, साबुन तथा औषधी निर्माण में।
3.	*वैटिवैरा जिजिनाईडिस* (खस)	0.25–2.07%	इत्र उद्योग का महत्वपूर्ण और बहुमूल्य कच्चा पदार्थ, कास्मैटिक तथा साबुन निर्माण में भी प्रयुक्त। पेय पदार्थों को सुवासकारी (flavouring) बनाने में। आमवात, कटि वेदना में उपयोगी, मोच में तेल की मालिश की जाती है।

रेशे

अति प्राचीन काल से ही वृक्षों से प्राप्त रेशों का उपयोग मनुष्य विविध कार्यों में करता आ रहा है। राजस्थान में पाई जाने कुछ रेशा उत्पादक प्रजातियाँ इस प्रकार हैं:

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	रेशे के उपयोग
1.	*बॉहिनिया रेसीमोसा* (असुंदरो)	तने की अंदर वाली छाल से प्राप्त रेशे स्थानीय निवासियों द्वारा रस्सी तथा कार्डेज (cordage) बनाने में।
2.	*सिप्रस रोटन्डस* (खल / मोथा)	जड़ के कंद से प्राप्त रेशे इत्र, साबुन तथा औषधी निर्माण में।
3.	*वैटिवैरा जिजिनाईडिस* (खस)	जड़ चिक, चटाईयाँ हाथ के पंखे और टोकरियाँ एवं खस की टट्यिाँ बनाने में उपयोगी।
4.	*कैलोट्रोपिस जाईगैण्शिया* (आक) एवं *कै. प्रोसेरा*	तने की छाल से प्राप्त सफेद, रेशमी, टिकाऊ और मजबूत रेशा तनन क्षमता में कपास से अच्छा होता है। यह मत्स्य जालों, धनुष की डोरियों और रस्सी बनाने में, बीज से प्राप्त रेशे गद्दों और तकियों को भरने में काम में आते हैं।
5.	*केशिया आरीकुलाटा* (आंवल छाल)	रस्सी बनाने में, छाल का औषधीय उपयोग गठिया, नेत्र विकार, गोनोरिया और मधुमेह में होता है।
6.	*क्रोटोलेरिया बुरिहा* (सीणिया)	तने की छाल से प्राप्त रेशे सनहैम्प के प्रतिस्थापक (substitute) के रुप में रस्सी एवं झाडू बनाने में काम में लेते हैं परंतु इसकी रस्सियाँ मजबूत नहीं होती।
7.	*कार्डिया गराफ* (गूँदी)	तने की अंदर वाली छाल से प्राप्त मजबूत रेशों का उपयोग कुँए से पानी निकालने वाली रस्सी बनाने में किया जाता है।

टैनिन एवं डाई

कच्चा चमड़ा रंगाई को टैनिन कहते हैं, यह निम्नलिखित वृक्षों से प्राप्त होता है:

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	उपयोगी भाग
1.	*अकेशिया निलोटिका* (देशी बबूल)	छाल–10–20: टैनिन
2.	*केशिया आरीकुलाटा* (आंवल छाल)	छाल–18: टैनिन
3.	*जिजिफस मारिशिआना* (बेर)	छाल–4–9: टैनिन
4.	*एनोगाइसिस पेंडूला*	पत्तियाँ– 40: टैनिन
5.	*एम्बलिका आफीसिनेलिस* (आँवला)	छाल और पत्तियाँ

डाई

ये कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन (कभी–कभी नाइट्रोजन) के सरल रसायनिक यौगिक होते हैं, जो कुछ वृक्ष प्रजातियों के उत्तकों से स्त्रावित होते हैं। पौधों में डाई की मात्रा वृक्ष प्रजाति एवं स्थान के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। संश्लेषित डाई का प्रचलन होने के उपरांत भी पौधों से प्राप्त प्राकृतिक डाई का ग्रामीण क्षेत्रों में ब्लॉक प्रिंटिंग हेतु बहुतायत से उपयोग किया जाता है। वस्त्र उद्योग के अलावा डाई का पेण्ट, वार्निश, चमड़ा, स्याही, कागज एवं औषधी निर्माण में उपयोग किया जाता है। महत्वपूर्ण डाई उत्पादक वृक्ष इस प्रकार हैं:

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	उत्पादक भाग
1.	*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (पलाश)	फूल
2.	*राईटिया टिंक्टोरिया* (दूधली)	पत्तियाँ
3.	*अकेशिया कटैचू* (खैर)	हार्टवुड से कत्था

वनौषधियाँ

अति प्राचीन काल से ही विविध साध्य व असाध्य रोगों के उपचार में ग्रामीणों/ स्थानीय जन समुदाय द्वारा वनौषधियों का उपयोग किया जा रहा है। राजस्थान की महत्वपूर्ण वनौषधी सम्पदा इस प्रकार है:

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	खाद्य अंग
1.	*एम्बलिका आफीसिनेलिस* (ऑवला)	फल– विटामिन सी प्रचुर मात्रा में।
2.	*एस्पेरेगस रेसीमोसस* (शतावरी)	जड़– कमजोरी व गठिया में, मूत्रल, जड़ें नेत्रों के लिए हितकर, जठराग्निवर्धक, पुष्टिदायक, स्निग्ध, शुक्रवर्धक, दूध बढ़ाने वाली, बलकारक, अतिसार, वात, पित्तरक्त तथा शोथ के उपचार में प्रयुक्त होती हैं।
3.	*विदैनिया सोम्नीफेरा* (अश्व गंधा)	जड़– कमजोरी व गठिया में, मूत्रल।
4.	*एजल मार्मिलोस* (बेल)	अतिसार, प्रवाहिका, मधुमेह, कर्ण रोग तथा वमन में।
5.	*मधुका इण्डिका* (महुआ)	ब्रोंकाईटिस व कफ में लाभप्रद, छाल का उपयोग मसूढ़ों से बहते हुए खून को रोकने में।
6.	*टर्मिनेलिया बैलेरिका* (बहेड़ा)	कफ, श्वास रोग, सामान्य दौर्बल्य कंठदोष, ज्वर, अतिसार, कुष्ठ रोग व वमन में लाभकारी।
7.	*कॉमीफोरा वाईटि* (गुग्गल)	कृमिकनाशक, गलगण्ड (Hemiplagia), कफ निस्सारक, व्रणशोधक, रक्तशोधक, श्वेतकण वर्धक, रक्त में प्रोटीन की मात्रा बढ़ाने में, यकृत विकारों को दूर करने में, वात सन्तुलन तथा बंध्यता में लाभकारी।

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	खाद्य अंग
8.	*क्लोरोफाईटम बोरीविलीएनम* (सफेद मूसली)	पौष्टिक, बलवर्धक, शारीरिक शिथिलता दूर करने में, दूध बढ़ाने वाली, प्रसवोपरान्त होने वाली बीमारियों तथा मधुमेह निवारण हेतु।
9.	*एलोए वेरा* (घृत कुमारी)	गूदे का उपयोग– अर्श (piles)] कफ, आमवात व ज्वर में। रस– यकृत व प्लीहा रोगों में लाभकारी। कुष्ठ, चर्मरोग, दांतदर्द, खॉसी, चोट लगने पर, कब्ज, उदरशूल, बवासीर एवं सौन्दर्य प्रसाधनों में भी इसका उपयोग किया जाता है।
10.	*अडाहटोडा वसिका* (अडूसा)	जोड़ों के दर्द, खाँसी, ब्रोन्काइटिस, अस्थमा, पेचिश, डायरिया, उदर.मि निकालने, कांजक्टीवाइटिस व रक्त शोधन में।
11.	*कैथेरेन्थस रोज़ियस* (सदाबहार)	रक्त, स्तन तथा मूत्राशय कैंसर व मधुमेह में लाभदायक।
12.	*कानवोल्वूलस प्लूरिकॉलिस* (शंखपुष्पी)	मिर्गी, पित्तदोष, केश वृद्धि, ज्वर, रूधिर शुद्धिकरण, मुधमेह एवं याददाशत बढ़ाने के लिए औषधी रूप में प्रयुक्त।
13.	*केशिया फिस्टुला* (अमलतास)	पक्षाघात, आमवात, कब्ज व ज्वर में लाभप्रद।
14.	*फाइलेन्थस अमारस* (आमलकी)	रक्त स्त्राव, मधुमेह, प्रमेह, शिरःशूल, अतिसार, खाज–खुजली व मुख व्रण में लाभकारी।
15.	*बारलेरिया प्रायोनाईटिस* (वज्रदंती)	त्वचा, नेत्र विकार, कफ एवं इन्फैंटाईल डायरिया में उपयोगी
16.	*मोमोर्डिका डायोइका* (किंकोड़ा)	श्वास रोग, ज्वर, कुष्ठ रोग, मधुमेह तथा हृदय रोग में लाभप्रद। पित्तनाशक एवं छिपकली के विष में इसके कंद को जल में घिसकर सात दिन तक सेवन करने पर लाभ।
17.	*पिडेलियम म्यूरैक्स* (बड़ा गोखरु)	आमवात, प्रसूति रोग, यकृत वृद्धि व प्लीहा वृद्धि में लाभप्रद।

केशिया ऑरीकुलाटा

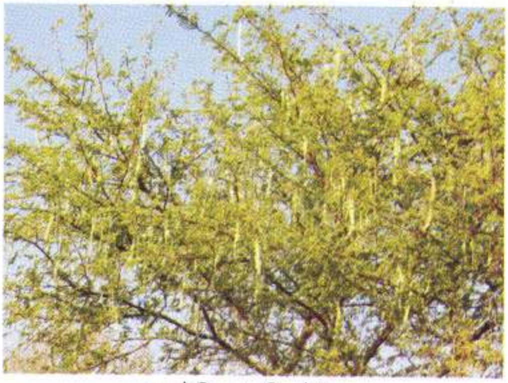

अकेशिया निलोटिका

गोंद एवं रेज़िन

इनका उपयोग कागज, टैक्सटाईल एवं कैलिको प्रिंटिंग, फार्मास्यूटिकल्स, खाद्य पदार्थों, पेण्ट व वार्निश, वाटर कलर एवं स्याही उद्योग आदि में होता है। कुछ महत्वपूर्ण गोंद एवं रेज़िन इस प्रकार हैं :

अकेशिया निलोटिका (देसी बबूल)

मध्यम आकार का सदाहरित यह वृक्ष गम अरेबिक या बबूल गम का प्रमुख स्रोत है। गर्मियों में वृक्ष के तने के कटे अथवा क्षतिग्रस्त भागों एवं शाखाओं में से गोंद का उत्पादन होता है।

गोंद औषधीय गुणोंयुक्त होता है एवं मिठाईयाँ बनाने के काम आता है।

अकेशिया सेनेगल (कुमटा)

एक छोटा 3–6 मीटर ऊँचाई का काँटेदार पर्णपाती वृक्ष होता है जो चट्टानी तथा रेतीली जमीन में भी आसानी से उग जाता है। इसकी छाल पीली–सफेद होती है एवं इसके तने से असली गोंद जिसे 'गम अरेबिक' कहते हैं, मिलता है। औसतन एक पेड़ से 150 ग्राम गोंद मई–जून में निकाला जा सकता है। इसके गोंद को तलकर, चीनी और भुने हुए आटे के साथ मिलाकर लड्डू बनाते हैं, जिन्हें प्रसव के उपरांत कमजोरी दूर करने के लिए महिलाओं को खिलाते हैं। इसके अलावा यह शामक के रुप में टैक्सटाईल, पानी के रंग, चमड़ा, पॉलिश, खाद्य उत्पाद, स्याही, वार्निश, पेण्ट तथा दवाईयाँ बनाने के काम आता है।

कॉमीफोरा वाईटि (गुग्गल)

एक बार में लगभग 200–500 ग्राम गोंद / वृक्ष / वर्ष एकत्रित किया जाता है। इसका गोंद रक्त शोधक होता है और रुधिर में कोलेस्ट्राल की मात्रा कम करता है। रेज़िन को अंतःव्रण में लोशन के रुप में, दाँतों के क्षरण में, स्पंजी तथा कमजोर मसूढ़े होने पर, पायरिया तथा गले में व्रण होने पर गरारे करने के काम में लेते हैं।

बासविलिया सिराटा (सालर गम)

औषधीय गुणों से भरपूर यह गोंद गठिया, तंत्रिका तंत्र के विकारों को दूर करने में तथा अगरबत्तियाँ बनाने में काम में आता है। इससे तैयार किए गए पेण्ट व वार्निश में तीव्रता से सूखने की क्षमता होती है। इसका इत्र और स्याही उद्योग में भी उपयोग किया जाता है।

साइमोप्सिस टैट्राबोनालोबा (ग्वार गम)

इसका प्रमुख उपयोग टैक्सटाईल इण्डस्ट्री में साईजिंग एवं प्रिंटिंग में किया जाता है। इसके अलावा यह खाद्य प्रसंस्करण, सौंदर्य प्रसाधनों एवं तेल उद्योग में काम में लिया जाता है।

एनोगाइसिस लेटिफोलिया (गम घट्टी)

इसका प्रमुख उपयोग साईजिंग व कैलिको प्रिंटिंग में होता है। फार्मास्यूटिकल कंपनियों में यह इमल्सीकारक के रुप में उपयोग किया जाता है। सिरेमिक व खाद्य उद्योग में भी यह प्रयुक्त होता है।

चारा उत्पादक वृक्ष व घास उत्पादक प्रजातियाँः राजस्थान की प्रमुख चारा उत्पादक वृक्ष व घास प्रजातियाँ निम्नलिखित हैं :

अकेशिया सेनेगल – गोंद

वृक्ष प्रजातियाँ

प्रोसापिस सिनेरेरिया (खेजड़ी) : हरी पत्तियों को स्थानीय भाषा में 'लूँग' कहते हैं, जो पशुओं के लिए पौष्टिक चारा हैं। सूखी पत्तियों को पानी में उबाल कर बाँटे के साथ खिलाते हैं। अनुमानतः 25–30 कि.ग्रा. सूखी पत्तियाँ / वर्ष / वृक्ष से प्राप्त होती हैं। अन्य महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजातियाँ जिनसे चारा प्राप्त होता है, इस प्रकार हैं–*अकेशिया निलोटिका* (देशी बबूल) *जिजिफस नुमुलेरिया* (झड़ बेर), *पिथोसैलोबियम डलसी* (जंगल जलेबी) और *कैलीगोनम पॉलीगोनोइडिस* (फोग) आदि।

घास उत्पादक प्रजातियाँ

लेजयूरस सिंडीकस (सेवण), *सैंक्रस सिलिएरिस* (धामण), *सी. सैटीजैरस*, स्पोरोबोलस प्रजाति, *डाईकैन्थियम*

एनोगाइसिस लेटिफोलिया

एन्यूलेटम, पैनिकम टर्जिडम और *ब्रेकिएरिआ रेसीमोसा* आदि महत्वपूर्ण घास उत्पादक प्रजातियाँ हैं।

शहद–मोम

यह ग्रामीण क्षेत्रों का महत्वपूर्ण उत्पाद है, जिसके उत्पादन के लिए *एपिस इण्डिका* मधुमक्खी का कल्चर किया जाता है। शहद वर्ष में तीन बार निम्नानुसार प्राप्त किया जाता है:

(1) मार्च–अप्रैल में : सर्वोत्तम किंतु अल्प मात्रा में

(2) मई–जून में : अच्छी मात्रा में

(3) नवम्बर–दिसम्बर में : अच्छी गुणवत्ता युक्त अच्छी मात्रा में

राजस्थान के हाड़ौती आँचल (सांगोद, केशोरायपाटन, दीगोद एवं बारां) में किसानों द्वारा 'एपीकल्चर' (मधुमक्खियों का संवर्द्धन करके) से 1.5–2.00 लाख रुपये प्रतिवर्ष आय अर्जित की जा रही है। वनों व उसके आस–पास के क्षेत्र में निवास करने वाले ग्रामीणों के लिए अकाष्ठ वनोपज आजीविका के साथ–साथ आय अर्जन का एक प्रमुख व महत्वपूर्ण संसाधन हैं। अतः प्रदेश की प्राकृतिक एवं पारिस्थितिकीय विषमताओं के उपरांत भी वन सम्पदा का वन सुरक्षा समिति अथवा स्वयं सहायता समूह के माध्यम से समुचित दोहन करके स्थानीय जन समुदाय को लाभान्वित किया जा रहा है।

तिफ्ल में बू आयेगी क्या मां बाप के एतबार की
दूध तो डिब्बे का है, तालीम है सरकार की ।

– 'अकबर' इलाहाबादी

जैव उर्वरक "वैम" की उपयोगिता एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण

डॉ. नीलम वर्मा एवं डॉ के. के श्रीवास्तव
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

देश की भौगोलिक स्थिति के अनुसार राजस्थान का लगभग 61 प्रतिशत क्षेत्र, थार मरूस्थल के नाम से जाना जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियाँ जैसे अधिकतम तापमान, कम वर्षा, अधिक वायुवेग, अधिक वाष्पीकरण एवं क्षारीय भूमि होने के कारण पौधों को अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता। इसके साथ ही, लगातार फसल लेने से भूमि की उर्वराशक्ति घटती रहती है। पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए नाइट्रोजन, पोटॉश एवं फॉस्फोरस मुख्य तत्व हैं, जिनकी पूर्ति रासायनिक उर्वरकों द्वारा की जाती है। इन रासायनिक उर्वरकों के निरन्तर उपयोग से अधिक धन तो खर्च करना ही पड़ता है, साथ ही पौधे केवल 30–40 प्रतिशत पोषक तत्व प्राप्त कर पाते हैं। शेष रसायन भूमि में अघुलनशील अवस्था में पड़े रहते हैं, जिससे जल प्रदूषण तथा मृदा में अन्य जहरीले पदार्थ विद्यमान रहने की संभावना बनी रहती है, जो कि भूमि में पाये जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं के जीवन पर विपरित प्रभाव डालते हैं। जैव उर्वरकों का उपयोग, भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने तथा अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए किया जाता है। भारत में उपयोग में लाये जाने वाले जैव उर्वरक *राइजोबियम, एजेटोबेक्टर, एजोस्पाइरिलम, एजोला–एनाबिना,* नील–हरित शैवाल, कवकमूल (माइकोराइजा) एवं फास्फोरस घुलनशील जीवाणु आदि हैं।

यह एक आम धारणा है कि सभी कवक अथवा फफूँदी सदा हानिकारक होती हैं जो अचार, चटनी, मुरब्बे व अन्य खाद्य पदार्थों को खराब कर देती है, किन्तु कुछ कवक ऐसे भी होते हैं जो लाभदायक होते हैं व पेड़–पौधों के लिए पोषक तत्वों का काम करते हैं। इन्हें कवकमूल कहते हैं। ये कवकमूल, पौधों को आवश्यक पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस, जिंक, कापर, मैंगनिज इत्यादि देते हैं तथा इसके बदले में यह पौधों से कार्बोहाइड्रेट प्राप्त कर अपना जीवन–चक्र पूरा करते हैं । इनका उपयोग शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली वनस्पतियों में अधिक है क्योंकि यह कवकमूल, पौधे को विपरीत परिस्थितियों जैसे अधिक क्षारीयता, अधिक तापमान, पानी की कमी एवं मृदा में पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। यहाँ तक कि यह कवक, मृदा जनित रोगों से लड़ने की क्षमता भी रखते हैं। इन्हें जैव उर्वरक के नाम से भी जाना जाता है। ये कवकमूल, मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं– बहिपोषित (बाह्य कवकमूल), परान्त पोषित (अन्तः कवकमूल) एवं आंशिक बहिपरान्त पोषित। बहिपोषित (बाह्य कवकमूल) पाइनेसी, फेगेसी, क्यूप्रेसी, लेग्यूमिनेसी, बिटुलेसी आदि में पाये जाते हो। परान्त पोषित (अन्तः कवकमूल) 90 प्रतिशत पौधों में जैसे फसल, लेग्यूमस, घास आदि में पाये जाते हैं।

वैम अर्थात *वैसीकुलर अरविसकुलर माइकोराइजा,* परान्त पोषित कवकमूल का प्रकार है, जिसका आर्थिक महत्व बहुत अधिक हैं। शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली वैम *ग्लोमस, जाइगोस्पोरा, एक्यूलोस्पोरा, स्कलेरोसिस्टस एवं स्कुटिलोस्पोरा* आदि हो। इसके जीवाणु, मृदा में निश्चल अवस्था में पड़े रहते हैं। अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने पर, यह अकुंरित होकर पौधों की महीन जड़ों में प्रवेश कर, अपना जीवन चक्र प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में, यह कवक जाल फैलाते हैं एवं अन्तः कोषीय "अरबस्कुलस" बनाते हैं, जिनके सिरे अंगुली के आकार के कई भागों में बंटे रहते हैं। इनका कार्य कवक को कार्बोहाइड्रेट प्राप्त कर पहुँचाना होता है इसके बदले में मृदा में स्थित फास्फोरस को अघुलनशील अवस्था से घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। साथ ही पुट्टिका (वैसीकल्स) का निर्माण होता है, जिनके अन्दर इनका भोजन संग्रहित रहता है, जो कि इनकी विपरीत परिस्थितियों में पोषण के काम आता है। जड़ के बाहरी हिस्से में कवक जाल अनेक अपरिपक्व जीवाणु बनाते हैं, जो परिपक्व होकर पुनः अन्य पौधों की जड़ों में अकुंरित होकर अपना जीवन–चक्र पूरा करते हैं। इनके जीवाणु

का आकार अन्य कवकों के जीवाणुओं से बड़ा (45 से 500) होता है।

वैम अविकल्पी सहजीवी हैं तथा इन्हें अब तक प्रयोगशाला परिस्थितियों में सवंर्धन माध्यम में विकसित नहीं किया जा सका है। यद्यपि मृदा आधारित जैव उर्वरक बनाया जा सकता है फिर भी इस वैम कल्चर को बनाने के लिए हम इसका प्रारम्भिक कल्चर किसी संस्थान से प्राप्त कर, इनको फ्रिज/रेफ्रीजिरेटर में सुरिक्षत रख सकते हैं। यह वैम कल्चर, आम आदमी आसानी से स्वयं भी तैयार कर सकता है। इसको तैयार करने के लिए, सबसे पहले हम मृदा और बालू का आधा–आधा भाग लेंगे एवं छानकर उसका मिश्रण तैयार करेंगे तथा इस मिश्रण को गमलों में 3/4 भाग तक भर देंगे। इसके बाद प्रारम्भिक कल्चर, जो कि हमने अन्य संस्थान से प्राप्त किया था, कि एक सतह बिछा देंगे। अब इसके ऊपर मिश्रण की सतह डालकर मक्का या सेवन घास के बीज बो देंगे। बीजों को मिश्रण से ढक कर, इसको आवश्यकतानुसार पानी देंगे। गमलों को, कम से कम तीन माह तक नियमित देखभाल करने के पश्चात, ऊपरी पत्तियों को कैंची से काट देंगे और जड़ों को मिट्टी सहित बाहर निकाल कर, बारीक काट लेंगे और उसी मिट्टी में अच्छी तरह मिला देंगे। इस तरह यह मिश्रण जिसे की वैम कल्चर कहते हैं, उर्वरक के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है ।

यदि, हम अधिक मात्रा में कल्चर तैयार करना चाहते हैं, तो जमीन में 1 x 1 मीटर का गढ्ढा 25–26 से.मी. की गहराई तक खोद कर, इसकी मिट्टी निकाल कर, अभी जो विधि बताई है, उस विधि से तैयार कर सकते हैं। पौधशाला में, मदर बैड अथवा क्यारी में पौध तैयार करते समय, वैम कल्चर की एक परत, बीज बोने से पूर्व बिछा दें। कल्चर की मात्रा एक किग्रा. प्रति वर्ग मीटर की दर से पर्याप्त है । इस परत के उपर मिट्टी की एक या दो इंच की सतह देकर बीजों को बो दें । इससे बीज अंकुरित होने के पश्चात् अच्छी तरह वैम से संक्रमित हो जाते हैं। यदि नर्सरी में पॉलीथीन थैलियों में जो पौधे रखे जाते हैं, उनमें यह कल्चर/खाद देना चाहें तो पौधे के चारों ओर चार अथवा पाँच, कम से कम 4 इंच गहरे सुराख बना दें । अब इन सुराखों को इस कल्चर से भर दें तथा मिट्टी को दबाकर हल्का पानी दें दें। नवरोपित वृक्षारोपण में यह कल्चर 50 ग्राम प्रति पौधे की दर से चारों और सुराख बनाकर देना चाहिए। पुराने पेड़ों पर इसका प्रभाव देखने को नहीं मिलेगा, क्योंकि इन पेड़ों की जड़ें इस खाद को ग्रहण नहीं कर पाती हैं । इन उर्वरकों के प्रयोग, किसी भी प्रजाति के पौधों जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ की फसलों, चारे वाली घासों, बगीचों एवं वानिकी पौधों में सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। इनके उपयोग से पौधों में 40 से 60 प्रतिशत की अधिक वृद्धि देखी गई है।

अब प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान में जबकि बाजार में अनेक रासायनिक खादें उपलब्ध हैं तब भी उनके स्थान पर वैम कल्चर का ही उपयोग क्यों किया जाना चाहिए। आईये, एक नजर हम इनकी उपयोगिता पर भी डालें ।

इन उर्वरकों का कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है और न ही इससे कोई प्रदूषण फैलता है तथा पौधों को इन्हें बार–बार देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जबकि रासायनिक खादों को नियमानुसार बार–बार देना पड़ता है। आप जानते हैं कि फास्फोरस पौधों की वृद्धि के लिये नाइट्रोजन के बाद दूसरा आवश्यक तत्व है एवं प्र.ति में फास्फोरस की उपलब्धता मृदा, हरी खाद, पौधों तथा सुक्ष्म जीवों में पाई जाती है जो कि विभिन्न कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिकों के रूप में पाया जाता है। किन्तु पौधे इस फॉस्फोरस का उपयोग करने में असमर्थ होते हैं। यह वैम कल्चर, मृदा में पाये जाने वाले फॉस्फोरस की अघुलनशील अवस्था को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर पौधों को पहुँचाता है, जिससे भूमि की उर्वरकता बनी रहती है, जबकि रासायनिक खादों के प्रयोग से उर्वरकता धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है तथा पौधों को केवल 40 प्रतिशत ही प्राप्त हो पाती है। इस कल्चर से पौधों की वृद्धि एवं सूक्ष्म जड़ों की संख्या बढ़ती है, जिससे वे अधिक मात्रा में अपने आस पास उपलब्ध जल व खनिज लवणों का अवशोषण कर पाते हैं। यह खाद, पौधों में मृदा से होने वाले रोगों से लड़ने की क्षमता एवं अधिक लवणीय अथवा अम्लीय भूमि को सहन करने की क्षमता

प्रदान करता है और पानी की कमी में पौधों को जीवित रखता है। यह, शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले पौधों को अधिक ताप सहन करने की क्षमता प्रदान करता है। यह खाद, भूमि में पाये जाने वाले अन्य सूक्ष्म जीवाणु जैसे *एजेटोबेक्टर, राइजोबियम* की संख्या बढ़ाता है, जिससे की अधिक मात्रा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण हो सके व यह नाइट्रोजन पौधों द्वारा उपयोग में ली जा सके ।

अतः इस कल्चर को अधिकाधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से बड़े स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करके भी इसकी जानकारी किसान भाईयों तक पहुँचाई जा सकती है। इस संबंध में, अधिक जानकारी जोधपुर में पाली रोड पर स्थित शुष्क वन अनुसंधान संस्थान से प्राप्त कर सकते हैं।

खातिर से या लिहाज़ से मेहमान तो गया
झूठी क़सम से आपका ईमान तो गया

दिल ले के मुफ़्त कहते हैं कुछ काम का नहीं
उलटी शिकायतें रहीं एहसान तो गया

देखा है बुतकदे में जो ऐ शैख़ कुछ न कुछ
ईमान की तो ये है कि ईमान तो गया

डरता हूँ देख कर दिले.बे.आरज़ू को मैं
सुनसान घर ये क्यों न हो मेहमान तो गया

गो नामाबर से खुश न हुआ पर हज़ार शुक्र
मुझको वो मेरे नाम से पहचान तो गया

होशो हवासो ताबो तवाँ दाग़ जा चुके
अब हम भी जाने वाले हैं सामान तो गया

—'दाग़'

लेन्टाना कमारा : जैवविविधता के लिए एक खतरा

डॉ. आर. एस. रावत
भा. वा. अ. शि. प., देहरादून

प्रस्तावना

विगत कई वर्षों से हमारे देश में कुछ खरपतवार यानी अवांछित विदेशी पादप जातियां (*लेन्टाना कमारा, पार्थिनियम हीस्टोरोफोरस, यूपेटोरियम ऐडिनोफोरम, अल्टरन्नथिरा फिकोइडिया, अकस्थोस्पोरियम हिस्पिडियम, इकोरनिया क्रेसीपिस, क्रोटोन वोनपेलेनडिएनस, यूफोरविया ओडोरेटम* और *आरजिमोन मेक्सिकाना* इत्यादि) की संख्याए लगातार बढ़ती जा रही है। अवांछित पादप जातियां कृषि, चारागाह एवं वन भूमि में तीव्रता से फैल रही हैं और वनों में विद्यमान स्थानीय बहुपयोगी पादप जातियों से प्राकृतिक वासस्थान, पानी, खनिज तत्वों एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते है, जिससे स्थानीय पादप जातियों के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो रहा है। उपरोक्त लिखित खरपतवारों में से *लेन्टाना कमारा* के वन भूमि में तीव्र फैलाव से स्थानीय जैवविविधता सबसे अधिक प्रभावित हो रही है। यह मूलतः केंद्रीय एवं दक्षिणी अमेरिका के उष्ण क्षेत्रों का पैदाइशी पौधा है, जो भारतीय जलवायु की हर परिस्थितियों में उगने व फैलने की व्यापक क्षमता रखता है।

संक्षिप्त विवरण

बरविनेशी कुल का यह पौधा वनस्पतिक जगत में *लेन्टाना कमारा* नामक वैज्ञानिक नाम से जाना जाता है। हमारे देश में यह विभिन्न स्थानीय नामों जैसे कूरी, घतेरी, चतुरंग, उत्कल बूटी, बलहारी एवं फूल जड़ी इत्यादि नामों से जानी जाती है। लेकिन अंग्रेजी में यह लेन्टाना वीड के नाम से जाना जाता है। यह एक बहुवर्षीय, सीधा, बहुशाखीय, सदाबहार एवं सुगन्धित झाड़ी नुमा पौधा है जो लगभग 5 मीटर तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ साधारण, अण्डाकार, दंतनुमा एवं इसकी दोनों सतह खुरदरी होती है। इसके फूल प्रायः छोटे, बहुरंगी (पीले, गुलाबी एवं लाल) और समुह में लगे होते है। बहुरंगी फूलों के कारण इसको 'स्पेनिश लैग' के नाम से भी जाना जाता है। इसके फल प्रायः प्रारम्भ में हरे रंग के होते है जो कि पकने पर नीले हो जाते है। इसकी जड़े प्रायः लम्बी, गहरी एवं फैलाव लिए होती हैं।

केंद्रीय एवं दक्षिणी अमेरिका में लेन्टाना का उपयोग केंसर व अन्य प्रकार के ट्यूमर में पौराणिक औषधि के रूप में प्रयुक्त की जाती है। इसकी पत्तियों से बना काढ़ा/क्वाथ ज्वर, एन्फूलएन्जा एवं पेट दर्द में प्रयोग की जाती है। साथ ही इसकी पत्तियों का लेप घाव, चेचक एवं खसरे की रोकथाम में भी प्रयुक्त की जाती है। हमारे देश के कुछ भागों में इसके तनों को ईधन के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं और साथ ही इसके तनों से विभिन्न प्रकार की टोकरियां एवं फर्निचर भी बनाये जा रहे हैं।

वितरण

सर्वप्रथम अमेरिकी मूल के इस पौधे को सन् 1809 के लगभग राष्ट्रीय वनस्पतिक उद्यान, कोलकाता में एक सजावटी पौधे रूप में उगाया गया था। लेकिन आज यही सजावटी मेहमान पौधा विकराल फैलाव के कारण वन,

चारागाह, कृषि एवं बंजर भूमि में एक समस्या रूपी पौधे के रूप में तीव्रता से फैल रहा है। हमारे देश के अधिकांश क्षेत्रों जैसे डेक्कन, नीलगिरी, पश्चिमी घाट, बिहार, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर एवं उत्तर पूर्वी क्षेत्र इत्यादि लेन्टाना के फैलाव से प्रभावित हो चुके हैं। यह दक्षिणी भारत के शुष्क एवं नम पर्णपाती वनों से लेकर के हिमालय के फूटहिल्स तक फैल चुका है। यह तीव्रता से उष्ण क्षेत्रों को अतिक्रमित करने के पश्चात शीतोष्ण क्षेत्रों में भी फैलने के कगार पर है।

जैवविविधता पर प्रभाव

प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (आई.यू.सी.एन.) के अनुसार लेन्टाना दूनियां के 10 हानिकारक खरपतवारों में से एक है जो कि तेजी से फैल रही है एवं वन भूमि के अधिकतम क्षेत्रफल को अतिक्रमित कर रही है, और साथ ही जैवविविधता को भी प्रभावित कर रही है। लेन्टाना की पत्तियों, तनों एवं जड़ों में घातक एलिलो रसायन विद्यमान होते है, जो स्थानीय पादप जातियों के अंकुरण एवं वृद्धि को कम करती है। यह वन पारितंत्र में एक भयावह पेस्ट की तरह तेजी से फैलता है और अपने आसपास अन्य जातियों के पेड.–पौधों को उगने नहीं देती है जिससे यह वन सतहों में यह एक प्रभावी जाति के रुप स्थापित हो रही है और साथ ही वृक्ष जातियों के प्राकृतिक पुनर्जनन को भी रोक रही है। लेन्टाना के फैलाव से घास व चारे के पौधों की भी संख्या लगातार घटती जा रही है। साथ ही मृदा में विद्यमान पोषक तत्वों के सन्तुलन को भी असन्तुलित कर रही है। हमारे देश में लेन्टाना का फैलाव एक समस्या के रूप में सारे समाज के लिए चुनौती बना हुआ है। लेन्टाना के फैलाव से हमारे वन पारितंत्र की समस्त स्वदेशी जैवविविधता संकटाग्रस्त हो रही है।

नियन्त्रण एवं रोकथाम

लेन्टाना के फैलाव का नियन्त्रित करने के लिए रासायनिक, यांत्रिक, जैवकीय नियंत्रण जैसी विधियों को विकसित करने का अध्ययन किया गया है। रासायनिक नियंत्रण में विभिन्न प्रकार के खरपतवार नाशक रसायनों जैसे 2–4–5 टी, 2–4 डी, एमीन, होरडोन, गैमोम्पोन, ब्रसकीलर के छिड़काव से लेन्टाना के फैलाव को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया। जिनका प्रयोग कुछ सीमा तक सफल भी रहा। यांत्रिक नियन्त्रण में लेन्टाना को समूल जड़ सहित उखाड़ करके जलाया जाता है। जैवकीय नियन्त्रण के तहत विभिन्न प्रकार के आक्रमक कीटों जैसे मेक्सिको वासी मक्खी (ओकियो माइका लेन्टाना), लेन्टाना बग (टोलियो निमिया स्कूप्लस स्टाल), अेक्टो टोमा स्केविपेनिस ग्वीन, युरोप्लाटा जिराडीपिक तथा लेप्टावरसा डकोरा डारक को विदेशों से आयतित करके लेन्टाना के उन्मूलन करने के लिए देश के विभिन्न भागों में छोड़े गये थे। लेन्टाना के भीमकाय विस्तार पर नियन्त्रण करने के लिए विगत में किये गये प्रयास कुछ सीमा तक तो कारगर सिद्ध भी हुए, लेकिन किसी भी विधि से इसका सम्पूर्ण उन्मूलन नहीं हो सका। अब तक के अन्वेषणों से यह सिद्ध होता है कि इसके समूल उन्मूलन करने के लिए एक समग्र नियन्त्रण एवं रोकथाम विधि/तकनीक को विकसित करने की आवश्यकता है। जो कि पर्यावरण प्रिय होने के साथ–साथ सस्ती भी हो, ताकि जिसका प्रयोग देश के समस्त लेन्टाना प्रभावित क्षेत्रों में करके इसके तीव्र फैलाव को समाप्त किया जा सकें।

उपसंहार

जैवविविधता प्रतिज्ञा (सी. बी. डी.) में भी यह प्रावधान है कि उन आक्रामक प्रजातियों को जिनसे पारितंत्र, प्राकृतिक वासस्थान या जैवविविधता को खतरा हो, उन प्रजातियों पर नियंत्रण करने या उनके उन्मूलन करने का प्रयास करना चाहिए।

यदि समय से वन, चारागाह, कृषि एवं बंजर भूमि से लेन्टाना का उन्मूलन न किया गया तो हमारी समस्त स्थानीय बहुपयोगी पादप विविधता के साथ–साथ जन्तु विविधता भी विलुप्त प्राय हो जायेगी। लेन्टाना के उन्मूलन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर 'लेन्टाना इराडिकेशन मिशन' को शुरु करने की भी आवश्यकता है जिसके तहत लेन्टाना के तीव्र फैलाव से स्थानीय जैवविविधता के क्षरण को रोका जा सकें।

लेन्टाना के अतिक्रमण से वन पारितंत्र एवं जैवविविधता पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों एवं इसके उन्मूलन की वैज्ञानिक तकनीक को विकसित करने के लिए एक अखिल भारतीय समन्वयक अनुसंधान एवं विकास परियोजना पर कार्य करने की अत्यन्त आवश्यकता है। जो मुख्यतया निम्नांकित बिन्दुओं पर केंद्रित होनी चाहिए:

(1) दूरसंवेदन तकनीकी से वन क्षत्रों में लेन्टाना के फैलाव का आंकलन करना।

(2) लेन्टाना के तीव्र फैलाव से वन पारितंत्र एवं स्थानीय जैवविविधता पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का आकलन करना।

(3) लेन्टाना से बनाये जा सकने वाले विभिन्न प्रकार के संभावित लाभदायक उत्पादों का अन्वेषण करना।

(4) लेन्टाना के समूल उन्मूलन की एक व्यापक विधि/तकनीक का विकास करना।

(5) लेन्टाना से बनाये जाने वाले टोकरियों एवं फर्नीचरों की गुणवत्ता में सुधार करना।

(6) प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं के माध्यम से लक्ष्य समुहों की लेन्टाना उन्मूलन के लिए कार्य कुशलता का विकास करना।

(7) सामजिक जनजागृति द्वारा लेन्टाना उन्मूलन में जनमानस की भागीदारी सुनिश्चित करना।

"लेन्टाना हटाओ, जैवविविधता बचाओ"

ले चला जान मेरी रूठ के जाना तेरा
ऐसे आने से तो बेहतर था न आना तेरा।

अपने दिल को भी बताऊँ न ठिकाना तेरा
सब ने जाना जो पता एक ने जाना तेरा।

ये समझ कर तुझे ऐ मौत लगा रक्खा है
काम आता है बुरे वक्त में आना तेरा।

'दाग़' को यूँ वो मिटाते हैं ये फरमाते हैं
तू बदल डाल हुआ नाम पुराना तेरा।

—'दाग़'

पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि वानिकी : आवश्यकता एवं लाभ

डॉ. चरन सिंह, पी.के. गुप्ता एवं अजय गुलाटी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

हमारे देश में कृषिवानिकी, सदियों से चली आ रही वृक्षारोपण प्रणाली है, जिसके तहत कृषि फसलों के साथ बहु–वर्षीय पौधों को लगाया जाता है। प्राचीन काल से ही कृषि वानिकी का विभिन्न रूपों में उल्लेख मिलता है। जहां रामायण का अवलोकन करने पर इसका जिक्र त्रेता युग में "अशोक वाटिका" के रूप में आता है, वहीं द्वापर युग में इस प्रणाली के तहत वृंदावन की भूमि पर कदम के वृक्षों का जिक्र आता है। सम्राट अशोक के काल का अध्ययन करें तो सड़कों के किनारे किए गए वृक्षारोपण का जिक्र आता है। आधुनिक युग में भी अधिकांश कृषक प्राचीन प्रणाली के अन्तर्गत ही कृषि वानिकी विधि से वृक्षारोपण करते है।

देश का प्रत्येक किसान किसी न किसी रूप में कृषि वानिकी के तहत अपने खेत में वृक्षारोपण करता है। छोटे किसान प्रायः अपने खेतों की सीमा पर वृक्षारोपण करते हैं जबकि मध्यम व उच्च दर्जे के कृषक पूरे खेत में घनात्मक रूप मे कृषि वानिकी प्रणाली को अपनाते हैं।

देश के पर्वतीय क्षेत्रों में सीमान्त किसानों की संख्या अधिक होती है। भूमि कम होने के कारण पर्वतीय क्षेत्र के किसान अपने खेत की सीमा पर ही वृक्षारोपण करते है। कृषि वानिकी पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों के लिए अति आवश्यक एवं लाभप्रद है क्योंकि इसके तहत लगाए गए पेड़ ईंधन, चारा तथा अन्य इमारती लकड़ी यथास्थान उपलब्ध कराते हैं। साथ ही पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन बनाए रखते हैं। अतः पर्वतीय क्षेत्र में पेड़ों का अधिक मात्रा में कटान पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन पैदा कर सकता है तथा प्राकृतिक विनाश का कारण बन सकता है। पर्वतीय क्षेत्र में कृषि वानिकी अपना एक विशेष महत्व रखती है। यहाँ पर उगाए पेड़, झाड़ियां तथा घास स्थानीय लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। अधिक से अधिक लाभ पाने के लिए आज कृषि वानिकी क्षेत्र में सुधार लाने की आवश्यकता है जिसमें कृषि वानिकी प्रणाली में सुधार तथा उच्च गुणवत्ता वाले पौधें के रोपण पर जोर देने की आवश्कता है।

जैसा कि सभी जानते हैं, जीवाश्म आधारित ईंधन कोयला, गैस तथा प्राकृतिक तेल ये प्रकृति में सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हैं तथा कभी भी समाप्त हो सकते हैं। अतः यह जरूरी हो गया है कि पुनर्जनित होने वाले ईंधन पर अधिक ध्यान दिया जाए। इसके लिए अधिक से अधिक कृषि वानिकी की आवश्यकता है जिससे कि फसलों के साथ ईंधन प्रदान करने वाले पौधों का भी समावेश हो सके। साथ ही इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि पेड़ों के कटान तथा रोपण में उचित सन्तुल बना रहे।

आज के युग में सबसे अधिक आवश्यकता जलाऊ लकड़ी, चारा तथा रेशे की है। इसे ध्यान में रखते हुए इन वस्तुओं की पूर्ति के लिए खेतों में, सड़क के किनारे, रेलवे के किनारे, नदियों व नहरों के तट पर तथा बेकार पड़ी भूमि पर पेड़ लगाने की आवश्यकता है। आज हमारे पास यही ऐसी जगह है जहाँ पर कृषिवानिकी को बढ़ावा दिया जा सकता है तथा ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

ग्रामीण आंचल में प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी रूप में लकड़ी की आवश्यकता पड़ती है। आज गाँव के लोग जलाऊ लकड़ी तथा चारा बाहर से खरीदते हैं तथा इसके बदले में काफी पैसा खर्च करते हैं। इस कमी को ग्रामीण क्षेत्र में कृषि वानिकी को बढ़ावा देकर पूरा किया जा सकता है। इस कार्य के लिए कृषि भूमि के अतिरिक्त गाँव की शामलात तथा पंचायत भूमि का उपयोग भी किया जा सकता है। इस कार्य के लिए एक निश्चित परियोजना बनाकर ग्रामीणों को कृषि वानिकी के लिए प्रेरित किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्र में काफी जमीन

निजी स्वामित्व के अधीन है जिसे चरागाह, जंगल एवं उद्यान के रूप में विकसित किया जा सकता है। इससे वातावरण का संरक्षण भी होगा और लोगों की आजीविका में भी तुलनात्मक रूप से सुधार आएगा। अन्यथा इस तरह की भूमि मृदा क्षरण के कारण बंजर भूमि में परिवर्तित हो जाती है।

पर्वतीय क्षेत्र में रोपण के लिए उपयुक्त प्रजातियां पहाड़ियों वाला परिक्षेत्र (1200–2300)

प्रजाति	स्थानीय नाम	रोपण स्थान	उपयोग
एस्कुलस इन्डिका	खनूर/पंगर	खेत की सीमा पर	ईंधन, चारा, काष्ठ तथा सौंदर्य वृक्ष
एल्नस नेपालेन्सिस	यूटिरन	यथोपरि	ईंधन, मृदा संरक्षण
एल्नस नाइटिडा	क्यूनिस	यथोपरि	ईंधन, मृदा संरक्षण
बेटूल्स साइलेन्ड्रोस्टाकिया	कौर	यथोपरि	विशेष प्रकार के कागज, लुगदी, ईंधन, काष्ठ तथा मृदा संरक्षण
कार्पीनस विमीनियां	चम खडिक	यथोपरि	चारा एवं विशेष काष्ठ
फ्रेक्सीनस मेकरेन्था	अंगू	यथोपरि	विशेष श्रेणी का काष्ठ एवं चारा
ग्रविया आप्टीवा	भीमल	यथोपरि	चारा
एल्बिजिया चाइनेसिस	मेन्डिर	यथोपरि	ईंधन, चारा
सेलिक्स एल्वा	विलो	यथोपरि	टोकरी निर्माण
मोरस सेरेटा	कीमू	यथोपरि	विशेष श्रेणी का काष्ठ एवं चारा
जुगलेन्स रेजिया	अखरोट	यथोपरि	काष्ठ, फल
सिड्रस देवदारा	देवदार	यथोपरि	काष्ठ
क्यूप्रेसस टोरूलोसा	सुरई	यथोपरि	काष्ठ
कार्स्टेनोपिस ट्राई वुलोइसिस	बादाम	यथोपरि	काष्ठ, फल
मोरस डाइलेंटारा	मोरू	यथोपरि	ईंधन, चारा
क्वेरकसल्यूटा ट्राइकोफोरा	बान	यथोपरि	ईंधन, चारा
पोपुलस सिलिएटा	वन पीपल	यथोपरि	काष्ठ, ईंधन
पाइनस वालिचियाना	कैल	यथोपरि	काष्ठ
पाइनस रोक्सवर्गाई	चीड़	यथोपरि	काष्ठ, बैरोजा उत्पादन
प्रिन्सीपिया यूटेलिस	मैकल	यथोपरि	तेल
तूना सेरेटा	डारलिया	यथोपरि	काष्ठ, ईंधन
मइरिका नागी	काफल	यथोपरि	फल

जंगलों पर लगातार बढ़ते हुए दबाव को रोकने के लिए भी कृषि–वानिकी को बढ़ावा देना आवश्यक हो गया है साथ ही प्राकृतिक ईंधन के संरक्षण हेतु गोबर गैस आदि लगाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस तरह के संयन्त्र यदि सस्ती कीमत पर उपलब्ध करवाए जाएं तो निश्चित तौर पर जंगलों पर

दबाव कम हो जाएगा। इसके अतिरिक्त ईंधन के विकल्प के रूप में सौर ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है।

हिमालय क्षेत्र में अधिक चरान भी जंगलों के ह्रास तथा भूमि के बंजर होने का मुख्य कारण है। कभी–कभी तो जंगलों में आवारा पशुओं की संख्या काफी बढ़ जाती है क्योंकि जब पशु दूध देना बंद कर देते है तथा वृद्ध हो जाते हैं तो उन्हें जंगल में खुला छोड़ दिया जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि पशुओं को सिर्फ दूध के लिए न पालकर उनके गोबर के लिए भी पाला जाए क्योंकि गोबर से उत्तम कोटि की खाद प्राप्त होती है। साथ ही उन्नत किस्म के पशुओं को पालने पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। कृषि वानिकी को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय लोगों की सहभागिता भी आवश्यक है। इसके लिए विद्यालयों, पंचायतों तथा किसानों में कृषि वानिकी के प्रति जागरूकता लाना आवश्यक है। उनको उच्च गुणवत्ता वाले पौधों की जानकारी देकर कृषि वानिकी के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता हैं। स्कूली बच्चों द्वारा स्कूलों में ही लघु नर्सरियां विभाग तथा स्थानीय लोगों द्वारा उचित तैयारी कराई जा सकती है तथा बाद में तैयार पौध का निर्धारित मूल्य पर किसी भी सरकारी विभाग द्वारा खरीदा जा सकता है। इससे विद्यालय की आय भी बढ़ेगी और बच्चों को प्रोत्साहन भी मिलेगा।

वानिकी शिक्षा को निचले स्तर से लागू करना भी वानिकी की प्रोन्नति में एक सराहनीय कदम हो सकता है। इसके अन्तर्गत वातावरण संरक्षण के उपाय एवं महत्व तथा कृषि वानिकी के लाभ आदि के बारे में शिक्षा देना आवश्यक है।

शामे–गम की सहर नहीं होती
या हमीं को खबर नहीं होती ?

दोस्तों इश्क है खता लेकिन
क्या खता दर गुजर नहीं होती ?

हुस्न सबको खुदा नहीं देता
हर किसी को नजर नहीं होती।

–इब्ने इंशा

बबूल का पेड़ और किसान समृद्धि

श्रीमती संगीता त्रिपाठी
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

सदियों से हम यह कहावत सुनते आए हैं कि **'बोए पेड़ बबूल का और आम कहाँ से खाए'**, लेकिन अब कहते हैं **'बबूल–बबूल– पैसे वसूल'**। खेतों का गौरव बबूल एक ऐसा वृक्ष है जिसका जड़ से लेकर बीज तक प्रत्येक भाग बहुउपयोगी है। हिंदी में **'देसी बबूल'** व मारवाड़ी में **'देसी बावलिया'** के नाम से पहचाने जाने वाला यह पेड़ शुष्क क्षेत्रों के लिए अनुकूल होने के कारण कम पोषक तत्वों वाली भूमि, सड़क, रेल लाईन के किनारे, घर व कुएँ के आस–पास तथा खेतों में मेड़ों के किनारे –किनारे लगाते हैं। इसे ग्रामीण वृक्षारोपण या ग्राम्य ईंधन वृक्षारोपण (Village Woodlot Plantation) के रुप में भी लगाते हैं। देसी बबूल की लकड़ी भारी, टिकाऊ, चिकनी व मजबूत होती है। इससे रेल्वे के स्लीपर, खेती के औजार, नाव, चप्पू, बैलगाड़ी के पहिए, तेल निकालने की घानी, रहट आदि बनाने में उपयोग करते हैं। बबूल की लकड़ी और टहनियों को ईंधन के रुप में भी काम में लेते हैं। इससे अच्छी गुणवत्ता का कोयला तैयार होता है। बबूल की खेती में पाँच वर्ष के अंत में 400 क्विंटल के आस–पास ईंधन मिलता है।

इसकी ताजी लकड़ी को आसानी से चीरा जा सकता है। हाथों और मशीनों की सहायता से इसे सरलता से गढ़ सकते हैं। इस पर पॉलिश तथा नक्काशी भी अच्छी होती है। इसी कारण शुष्क क्षेत्रों में इसका उपयोग फर्नीचर के साथ–साथ दरवाजे और खिड़कियाँ बनाने में भी करते हैं। जब पेड़ों को इमारती लकड़ी या ईंधन के रुप में काटते हैं, तो इसकी छाल एक उपउत्पाद के रुप में मिलती है। छाल प्राप्त करने के लिए तनों और शाखाओं को लकड़ी के मोगरों से पीटकर छाल उतारते हैं। छाल की पट्टियों को खुले स्थानों पर सुखाते हैं और फिर इन्हें चर्मशोधक कारखानों में भेजते हैं। इसकी छाल में टैनिन होता है जो चमड़ा रंगने के काम आता है। इसकी छाल से तैयार किए गए चमड़े कठोर, टिकाऊ, दृढ़ और बढ़िया किस्म के होते हैं।

देसी बबूल से प्राप्त होने वाला एक अन्य उपयोगी पदार्थ गोंद है, जो आम तौर पर मार्च से मई तक निकलता है। वृक्ष की आयु और एकत्रित करने की दशाओं के आधार पर हल्के पीले से भूरे या लगभग काले रंग का यह गोंद गोल या अण्डाकार बुंदकियों के रुप में निकलता है। वैसे तो यह पानी में घुल जाता है, पर गहरे रंग के गोंद में टेनिन का अंश होने से यह पानी में अपेक्षाकृत कम घुलता है। बढ़िया किस्म का गोंद कपड़ों की रंगाई–छपाई तथा कागज निर्माण में उपयोग में लाया जाता है। इसे घी में भूनकर मिठाईयाँ व चुईंगम (Chewing) बनाने में काम में लेते हैं जबकि घटिया किस्म का गोंद माचिस, स्याही, डिस्टैम्पर और कुछ विशेष प्रकार के रंगों तथा चिनाई के गारों में उपयोग किया जाता है।

देसी बबूल की पत्तियाँ और फलियाँ भेड़–बकरियाँ चारे के रुप में बड़े चाव से खाती हैं। इसकी कोमल टहनियों का उपयोग दाँतुन के रुप में करते हैं और अब तो बबूल का टूथपेस्ट भी व्यापारिक तौर पर बाजार में उपलब्ध है। इसकी छाल, पत्तियों और कलियों का निष्कर्ष रुई व रेशम को रंगने के काम में लेते हैं। बबूल के पेड़ों पर कहीं–कहीं लाख के कीड़े भी पाले जाते हैं और खेतों की मेड़ों पर बबूल के पेड़ जीवित बाड़ के रुप में खेत को सुरक्षा प्रदान करते हैं।

अकेशिया टार्टिलिस अथवा **इजराइली बबूल** के नाम से विख्यात यह वृक्ष रेतीले टिब्बों के स्थिरीकरण के लिए अत्यंत उपयोगी है। यह ईंधन का भी एक अच्छा स्रोत है एवं इससे अच्छा चारकोल भी मिलता है। इसकी पत्तियाँ चारे के रुप में काम में आती हैं। 10 वर्ष के पेड़ से लगभग 4–6 कि.ग्रा. सूखी पत्तियाँ तथा 10–12 ग्राम फलियाँ प्राप्त होती हैं जो भेड़–बकरियाँ व ऊँट चारे के

रुप में बड़े चाव से खाते हैं। हरी और सूखी दोनों तरह की पत्तियाँ मवेशियों को चारे के रुप में खिलाई जाती है।

इसे कृषिवानिकी के अंतर्गत शस्य–चरागाह मॉडल में भी लगाते हैं। इसके अलावा सड़क, रेल लाईन के किनारे, घर व कुएँ के आस–पास लगाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इससे ईंधन प्राप्त करने के लिए इसे ग्रामीण वृक्षारोपण या ग्राम्य ईंधन वृक्षारोपण (Village Woodlot Plantation) के रुप में भी लगाते हैं। इसकी कंटीली शाखाओं व टहनियों का उपयोग खेत की बाड़ के लिए करते हैं।

अकेशिया सेनेगल अथवा अंग्रेजी में 'गम अरेबिक' के नाम से पहचाने जाने वाला यह पेड़ अत्यधिक गर्मी, शुष्क हवाओं व रेतीले तूफान में भी जीवित रहता है व खराब से खराब चट्टानी तथा रेतीली जमीन में भी आसानी से उग जाता है। इसकी पत्तियाँ और फलियाँ जानवरों के लिए अच्छा चारा हैं जिन्हें बकरियाँ व ऊँट चारे के रुप में बड़े चाव से खाते हैं। इसकी लकड़ी जलाने के काम आती है और इससे उत्तम कोटि का चारकोल बनता है। यह खेती के औजार बनाने में, गाड़ियों के पहिए, गन्ना मशीनें तथा औजारों के हत्थे बनाने में काम आती है।

इसके तने से असली गोंद जिसे **गम अरेबिक** कहते हैं, निकलता है। यह 6 वर्ष के पेड़ से नियमित निकाला जा सकता है और औसतन 150 ग्राम/वृक्ष/वर्ष गोंद प्राप्त किया जा सकता है। इसके गोंद को तलकर चीनी और भुने हुए आटे के साथ मिलाकर लड्डू बनाते हैं, जिन्हें प्रसव के उपरांत कमजोरी दूर करने के लिए महिलाओं को खिलाते हैं। इसके अलावा यह शामक के रुप में टैक्सटाईल, पानी के रंग, चमड़ा, पॉलिश, खाद्य उत्पाद, स्याही, वार्निश, पेण्ट और दवाईयाँ बनाने के काम में आता है।

इसके बीजों में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन होने के कारण वे पौष्टिक होते हैं। सूखे बीज पंचकुटा की सब्जी {सूखी सांगरी (***प्रोसोपिस सिनेरेरिया*** की फलियाँ), सूखे कैर के फल, कुमट के बीज, कमल की डण्डी, साबुत अमचूर} के प्रमुख अवयव हैं। हरे बीजों की भी सब्जी बनाई जाती है और हरे बीज स्थानीय ग्रामीणों द्वारा 24–30 रुपये प्रति किलो के हिसाब से बेचे जाते हैं। इनमें खाखन नामक वसा पाई जाती है, जिसे साबुन बनाने में उपयोग में लाते हैं।

इसकी लम्बी–लम्बी जड़ों से मजबूत रेशा निकलता है जिसे धागे, रस्सियाँ व मछली पकड़ने का जाल बनाने में काम में लेते हैं। इसकी जड़ों व फूलों के औषधीय उपयोग भी हैं। इसे खेतों के चारों ओर वायुरोधी के रुप में लगाने के लिए भी उपयोगी माना गया है।

अकेशिया कटैचू या खैर अकेशिया वंश की ही एक प्रजाति है और इससे प्राप्त होने वाला सबसे महत्वपूर्ण उत्पाद कत्था है जिसकी मात्रा पेड़ के आकार व आयु पर निर्भर करती है। कत्था प्राप्त करने के लिए पेड़ों को गिराया जाता है और गिराने के बाद पेड़ों को लम्बे–लम्बे टुकड़ों में चीरते हैं और उनके अंदर वाली लाल लकड़ी को अलग करके 2.5 से.मी. आकार के वर्गाकार छोटे टुकड़े बनाकर मिट्टी के बर्तन में 12 घण्टे तक उबालते हैं। फिर इसे उस समय तक सांद्रित करते हैं जब तक कि यह चाशनी की तरह गाढ़ा न हो जाए। इसे कुछ दिन ऐसे ही छोड़कर मिट्टी के बर्तन पर रखी हुई टोकरियों में अथवा रेत में बने हुए सांचों में उंडेलते हैं। पहली विधि में कत्था टोकरियों में रह जाता है और दूसरी विधि में रेत टेनिनों को सोख लेती है और कत्था क्रिस्टलीय पदार्थों के रुप में बच जाता है। कत्था पान लगाने का एक आवश्यक घटक है एवं इसके अनेक औषधीय उपयोग भी हैं। यह कुष्ठ रोग, खट्टी डकार, अतिसार आदि में लाभकारी होता है। मसूढ़ों से बहने वाला खून रोकने के लिए भी इसका कुल्ला करवाया जाता है।

इस पेड़ की लकड़ी पर दीमक आसानी से नहीं लगती। यह बलिता या ईंधन के रुप में काम आती है और इसका कोयला भी अच्छा बनता है। यह खेती के औजार बनाने में, गाड़ियों के पहिए, गन्ना मशीनें तथा औजारों के हत्थे बनाने में काम आती है।

अकेशिया ल्यूकोलोइया अथवा **सफेद कीकर** के नाम से विख्यात सुबबूल पशुओं के लिए एक पौष्टिक चारा जो प्रदान करता ही है साथ ही अकाल के दिनों में इसकी छाल को आटे में पीस कर खिलाते हैं। इसकी छाल का उपयोग चर्मशोधन में भी करते हैं। इसके गोंद का उपयोग देसी चिकित्सा में भी किया जाता है। इसकी लकड़ी का उपयोग साधारणतः खेती के औजार बनाने, तेल घानियों, बैलगाड़ियों और उनके पहिए आदि बनाने में करते हैं।

दीमकों के बारे में अल्प ज्ञात तथ्य

विवेक त्यागी एवं सचिन कुमार
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्रस्तावना

ऐसी धारणा है कि दीमक अत्यधिक हानिकारक कीट है। दीमक का नाम यूनानी भाषा के शब्द टर्म–एन–इट से बना है जिस का अर्थ है अन्त छोर तक विनाश। यहां तक कि प्राचीन काल में दीमक को मानव द्वारा निर्मित काष्ट संरचनाओं के विनाशक के रूप में जाना जाता रहा है दीमक एक ऐसा काष्ट–विनाशक कीट है, जिसको मानव ने सदा ही नियंत्रित करने का प्रयास किया है। यद्यपि दीमक काष्ठ और अन्य सैलुलोज युक्त पदार्थों का भक्षण करती है और मानव के हितों को प्रथम दृष्टया हानि पहुँचाती है। परन्तु वास्तव में दीमक एक उपयोगी प्राणी है।

अभी तक सम्पूर्ण संसार में दीमक की 2300 जातियाँ व भारत में 5 कुल, 59 वंश तथा 337 जातियाँ उपलब्ध हैं जो कि 48° उत्तरी 48° दक्षिणी उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पायी जाती हैं। एक अनुमान के अनुसार 90 प्रतिशत दीमक की प्रजातियाँ उपयोगी हैं, जो कि पर्यावरण के लिए एक महत्वर्पूण भूमिका निभाती हैं। वन्य जीवों के मध्य दीमक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रजाति है जो कि गर्म जलवायु में पोषक तत्वों का विघटन करती हैं।

दीमक कार्बनिक पदार्थों के द्वारा मृदा की गुणवत्ता बढ़ाती है, स्थलीय पारितन्त्र में यह सेलुलोज वाले जीवभार को उच्चपोषक जीवभार में परिवर्तित करती है तथा यह अपघटकों के खाद्य जाल में केन्द्रीय भूमिका निभाती है।

दीमक खाद्य के रूप में भी उपयोग में लायी जाती है तथा यह वन्य जैवविविधता के लिए मुख्य भोजन का आधार भी है।

लाभप्रद उपयोग

(1) दीमक व मृदा : यह मृदा को पादप व जन्तु वर्ग के लिए उपयोगी बनाती है दीमक मृदा को रूपान्तरित करके उसे और अधिक उपजाऊ बनाती है।

(2) *लिग्नोसेलुलोजिक* व्यर्थ पदार्थों का जैविक रूपान्तरण: दीमक लिग्नोसेलुलोजिक पदार्थों को जन्तु जीवभार में परिवर्तित करती हैं आने वाले समय में यह हमारे लिए एक अत्यन्त लाभकारी कीट साबित होगी यह अपनी आन्त्र में पाये जाने वाले सहजीवी जीवाणुओं व प्रोटोजोओ के द्वारा सेलुलोज का पाचन करती है, यह प्रकृति का प्राचीन पुनर्रूपान्तरण का स्रोत है।

(3) स्थलीय व्यर्थ पदार्थों के प्रबन्धन में दीमक का उपयोग: सम्पूर्ण संसार में कूड़े (अवशिष्ट पदार्थों) का निराकरण एक मुख्य समस्या है जिसमें बड़ी मात्रा में समय व धन के साथ साथ मानवीय शक्ति की आवश्यकता होती है। दीमक इन अवशिष्ट पदार्थों को सरल तत्वों में विघटित करती है। अवशिष्ट पदार्थों के निराकरण हेतु दीमक संवर्धन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपयोग के रूप में उभरा है।

(4) दीमक व भोजन : पंखों वाली दीमकों और रानी दीमक अधिक प्रोटीन वाली होती है। संसार के बहुत से भागों में उनके भोजन में उपयोग किया जाता है उन्हें मुर्गियों को भी खिलाया जाता है। भारत के कुछ क्षेत्रों में वनों में रहने वाले लोग रानी दीमक को बाजार में विक्रय करके अपनी आजीविका चलाते हैं।

दीमक का संवर्धन

कुछ देशों में जैसे कि पश्चिमी अफ्रीका में दीमक को पालने के प्राचीन तरीके अपनाये जाते है और इस कार्य में फसलों के अवशिष्ट पदार्थ उपयोग में लाये जाते हैं। दीमक का संवर्धन करने के लिए दीमक को मिट्टी के गमलों में नम काष्ठ के साथ सवंर्धित किया जाता है क्योंकि दीमक के विकास के लिए नम वातावरण आवश्यक है।

दीमक संवर्धन की यह पद्धति अब अन्य क्षेत्रों में भी उपयोग में लाई जा रही है। बहुत से विकासशील देशों

में दीमक को भोज्य पदार्थ के लिए संवर्धित किया जाता है।

दीमक संवर्धन के लिए दीमक की उपयुक्त प्रजातियाँ

दीमक संवर्धन के लिए दीमक की सभी प्रजातियाँ उपयुक्त नहीं होती है संवर्धन के लिए उपयुक्त कुछ जातियाँ निम्नलिखित है।

(1) ओडोन्टोटर्मिस
(2) माइक्रोटर्मिस
(3) एमीटर्मिस
(4) एरीमोटर्मिस
(5) एनोप्लोटर्मिस
(6) मैक्रोटर्मिस
(7) स्पीक्युलेटर्मिस
(8) डाइकस्पिडीटर्मिस
(9) माइक्रोसीरोटर्मिस
(10) एंगुलिटर्मिस

इस प्रकार समग्र रूप में आकलन करने पर दीमकों की लाभकारी भूमिका उनके विनाशकारी कार्यों से कहीं बढ़कर ही है। इसलिए, इस प्राकृतिक संसाधन को उपयोग में लाने के लिए सुसंतुलित रणनीति बनाई जानी अपेक्षित है।

देख तो दिल कि जां से उठता है
ये धुआं सा कहाँ से उठता है।

यूं उठे आह उस गली से हम
जैसे कोई जहाँ से उठता है।

— **'मीर'**

ये सोच के जाता नहीं मयखाने की जानिब
आ जायें न फिर याद वो भूली हुई आँखें।

— **अज्ञात**

विविधा

हर आदमी में होते हैं दस बीस आदमी
जिसको भी देखना हो कई बार देखना

मोरों की स्वर्ग स्थली : आफरी परिसर

(हमारे राष्ट्रीय पक्षी पर एक नजर)

श्रीमती संगीता त्रिपाठी एवं राजेश कुमार
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

थार मरुस्थल की हृदयस्थली में स्थित वानिकी अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रणी, शुष्क वन अनुसंधान संस्थान आफरी परिसर हमारे देश के राष्ट्रीय पक्षी मोर के लिए अत्यन्त रमणीय, वनों युक्त सुरक्षापूर्ण स्थान है। इस परिसर में मोरों को निर्भय होकर विचरण करते हुए यत्र–तत्र देखा जा सकता है।

हमारा राष्ट्रीय पक्षी मोर

इस परिसर में मोर किसी भी समय आवासीय बंगलों के आस–पास बगीचों में, पेड़ों के झुरमुटों में तथा सड़कों पर देखे जा सकते हैं। इनके साथ मादाओं को भी देखा जाता है। कभी–कभी इनके बच्चों को भी देखा जा सकता है। गत वर्ष कार्यालय भवन के अंदर पेड़–पौधों के झुरमुटों में झाड़ियों के बीच मोरनी के अंडों को देखा गया। मोर अपने परिवार के साथ सर्दियों में प्रातः सात बजे से दस बजे तक तथा सायं पांच बजे से छः बजे तक निर्भीक रूप से विचरण करते हुए रिहायसी इलाके में लोगों के घरों के किचन गार्डन, लॉन, घरों की छतों इत्यादि पर प्रायः देखे जाते है। गर्मियों में ये प्रायः प्रातः पांच बजे से देखे जाते हैं। परिसर में अनेक प्रकार के

मोर के अंडे

पक्षी तथा मोर अपने झुंड में आते हैं और वातावरण को अत्यन्त रमणीय बना देते हैं।

ऐसा देखा गया है कि प्रातः दस बजे तक रिहायसी इलाके में तथा मंदिर प्रांगण में विभिन्न स्रोतों से खाद्य ग्रहण करने के पश्चात् ये परिसर के पिछले भाग में स्थित वी.एम.जी. क्षेत्र के घने झुरमुटों तथा बीहड़ स्थानों पर चले जाते हैं। इसका मुख्य कारण है इस दौरान मानवीय गतिविधियों का बढ़ जाना। हालांकि ये परिसर में पूर्णतया सुरक्षित हैं परन्तु रक्षात्मक गुणों के कारण ये ऐसा करते हैं।

परिसर का वातावरण अक्सर मोर और मादाओं की 'पिकाओं' की आवाज से गुंजायमान रहता है। वर्षा के दिनों में एक साथ अनेक मोरों की आवाज से परिसर का वातावरण और भी आनन्ददायक हो जाता है।

यद्यपि मोर इस परिसर में आफरी के भवन निर्माण से पूर्व भी रहा करते थे, किंतु निम्नांकित संख्यात्मक एवं सुरक्षात्मक कारणों से गत पाँच वर्षों में इनकी जनसंख्या में वृद्धि हुई है :

- आफरी परिसर के सौंदर्यीकरण के दौरान पेड़–पौधों की संख्या में वृद्धि होना।
- आफरी परिसर की भूमि चारों ओर से सुरक्षित होने, जल की उपलब्धता होने और बाहर की
- कॉलोनियों की अपेक्षाकृत मानवीय गतिविधियां कम होने के कारण सुरक्षात्मक अहसास होना।
- बाहरी क्षेत्र की अपेक्षाकृत परिसर में वन क्षेत्र का अधिक मात्रा में होना।
- परिसर में खाद्यों की प्राप्ति आसानी से होना।

उपरोक्त कारणों से मोरों ने प्राकृतिक रूप से इसे अपना आवासीय स्थल बना लिया है एवं यहाँ ये अपने आप को पूर्णतया सुरक्षित महसूस करते हैं। अनुमानतः इस परिसर में दस–पन्द्रह मोर तथा पन्द्रह–बीस मोरनियां एवं इनके बच्चे हैं। इनकी संख्या में गत वर्षों में प्रत्याशित बढ़ोतरी हुई है।

प्राकृतिक खतरा

मोरों को यहां का वातावरण पूर्ण सुरक्षित होने के बावजूद भी कभी–कभी कुत्तों द्वारा घायल होने अथवा बीमारी से ग्रसित हो जाने का खतरा बना रहता है। कुत्तों द्वारा मोरों का पीछा किया जाना तथा उनको अपना शिकार बनाना एक आम समस्या है। गत वर्ष एक मोर किसी बीमारी के कारण उड़ने में अक्षम हो गया था जिसे वन्य जीव उड़नदस्ता, जोधपुर को उचित उपचार हेतु सौंप दिया गया था। मोर हमारी राष्ट्रीय धरोहर है जिसका संरक्षण करना जन–जन का कर्तव्य है। प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने में इसका अमूल्य योगदान है। इसके सुरक्षात्मक उपाय आवश्यक हैं जिससे कि विलुप्त होती इस प्रजाति का अस्तित्व बचाया जा सके।

दाना चुगता हुआ मोर

मोर (पीकॉक) जिसे वैज्ञानिक भाषा में *पेवो क्रिस्टेटस* (लिन.) कहा जाता है, दो हजार वर्ष पूर्व घरेलू परिवेश में आया। बहुत कम लोग जानते हैं कि इसे विदेशों में खाद्य आपूर्ति हेतु निर्यात किया जाता था। जितना सुन्दर यह दिखता है इसकी उतनी सुन्दर आवाज नहीं होती। भारतीय संस्कृति में देवी–देवताओं के साथ चित्रों में दिखने वाला यह पक्षी भारत का वंशज है। परन्तु अब यह उन पशु–पक्षियों की सूची में शामिल है जिनका अस्तित्व खतरे में है। बहुत पहले ये खाने के लिए पाले जाते थे परन्तु अब हमारे देश में इनको मारने पर प्रतिबंध है और वन्य प्राणी (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के अंतर्गत मोर को मारने या पकड़ने पर न्यूनतम तीन वर्ष की कैद और 10,000/– रूपये के जुर्माने का प्रावधान है। चूंकि, मानव द्वारा धार्मिक या आडम्बर कारणों से मोर को कभी नहीं सताया जाता, अतः यह आवासीय क्षेत्रों में संरक्षण लेना पसन्द करता है।

आफरी परिसर में मोर

मादा मोर को अंग्रेजी में पीहेन और इनके बच्चों को पीचिक कहा जाता है। मोर सुन्दर नीले हरे रंग की पंखानुमा फैल जाने वाली पूंछ से पहचाना जाता है। पंखों पर नेत्र जैसी आकृति के रंगों की श्रेणी बनी होती है जिन्हें ट्रेन फैदर कहा जाता है जो कि इसकी असली पूंछ को ढके रहते हैं। मोरनी भूरे या स्लेटी भूरे रंग से तथा

छोटी पूंछ से पहचानी जाती है। मोर प्रत्येक वर्ष अपने पंख बदलता है। गर्मियों के दौरान इसके पंख गिर जाते हैं। इनके पंख अत्यंत सुंदर होते हैं और घरों में सजावट व धार्मिक कार्यों में काम आते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली कुछ जनजातियॉ एवं छोटे–छोटे बच्चे इन्हें एकत्रित करके बेचते हैं। नर, मादा की अपेक्षा अधिक सुन्दर दिखता है। मोर का वजन लगभग छः से तेरह पौण्ड (2.7 किलो ग्राम से 6.00 किलो ग्राम तक) तथा लम्बाई पांच फुट तक होती है।

ये जमीन पर भोजन के लिए विचरण करते हैं, परन्तु शाम को जल्दी ही वृक्षों की टहनियों पर जाकर विश्राम करते हैं। अधिक दूरी तक नहीं उड़ सकने वाला यह पक्षी पद चाप सुनते ही उस स्थान को धीरे से छोड़ देता है परन्तु किसी खतरे का अहसास होते ही भय के कारण तेज पि–का–का–का......के स्वर के साथ किसी ऊंचाई वाले स्थल या वृक्ष की ऊंची टहनी का आश्रय ले लेता है। यह संभवतया झुण्ड के अन्य सदस्यों को खतरे का एहसास करवाने का एक संकेत होता है।

भोजन

पौधों व फूलों की पत्तियां, फल, बीज, कीट, जमीन पर रेंगने वाले तथा जल–स्थलीय छोटे जीव इनका भोजन है। वयस्क कोबरा सर्प इनका प्रिय भोजन है। इसीलिए ये जहाँ रहते हैं, वहाँ सर्प कम संख्या में पाए जाते हैं।

प्रजनन

नर तथा मादा मोर कम से कम पन्द्रह वर्षों तक साथ–साथ रह सकते हैं। संगम ऋतु के दौरान नर व मादा मोर अत्यन्त उच्च स्वर में अपनी आवाज से एक–दूसरे को आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। मादा मोर अधिक धब्बे युक्त पंखों वाले मोर को पसन्द करती हैं। इसीलिए अधिक आयु के मोर के साथ प्रजनन की प्रबल संभावना होती है। नर मोर संगम ऋतु के दौरान अपने सुन्दर नीले–हरे पंखों का पंखानुमा आकृति में फैला कर मादा को लुभाता है। मादा मोर जमीन पर ही अंडे देती है। इनके घोसलों में आमतौर पर तीन से पांच तक सफेद हल्के भूरे रंग के अंडे होते हैं जिनसे एक महीने में बच्चे निकल आते हैं। इनकी देखभाल मादा करती है।

मोर को बर्मा सहित अनेक राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रीय चिह्न के रूप में प्रयोग किया गया है। अतः यह हम सभी का पावन कर्त्तव्य है कि हम भी अपने धीरे–धीरे विलुप्त हो रहे इस राष्ट्रीय पक्षी को संरक्षित करने में अपना सक्रिय योगदान दें।

मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था
दिल भी या रब कई दिये होते
— **'गालिब'**

प्राकृतिक रंगो का रहस्य

अनुभा श्रीवास्तव एवं ए. के. पांडे
सा.वा.पा.पु.के., इलाहाबाद

रंगो के बिना तो जीवन की कल्पना ही अधूरी है। प्राकृतिक रंगो ने मनुष्य के जीवन को अलग ही आयाम दिया है। दैनिक उपयोग में आने वाली लगभग सभी वस्तुयें कहीं न कहीं इन प्राकृतिक रंगो से प्रभावित है। जैसे–वार्निश, फैब्रिक, कागज, दवाईयाँ, लकड़ी, खाद्य पदार्थ तथा अन्य विविध वस्तुयें। इन प्राकृतिक रंगों का प्रयोग लगभग पाँच से छः हजार वर्ष पूर्व से हो रहा है। आज कृत्रिम रंगो ने भी अपना विशेष स्थान बना लिया है, किन्तु इन प्राकृतिक रंगो की उपयोगिता अमूल्य है। यह रंजक कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन तत्वों से बने साधारण यौगिक है। कभी कभी नॉइट्रोजन भी संयुक्त होता है। यह रंग वनस्पतियों से द्वितीयक उत्पाद के रूप में उत्सर्जित होते हैं। विभिन्न प्राणी तथा वनस्पति स्रोतों से प्राकृतिक रंग प्राप्त होते है जैसे जड़, तना, पत्ती, फल, फूल, छाल आदि। वनस्पतियों से लगभग 2000 प्रकार के प्राकृतिक रंग प्राप्त होते हैं, जिनमें से लगभग 50 ही व्यवसायिक स्तर पर विकसित हुये हैं। विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त होने वाले रंग हैं:

1. वनस्पतियों के तने से प्राप्त होने वाले रंग

(i) कत्था : यह खैर या *अकेसिया कैटेचु* के तने से प्राप्त होता है। इसका प्रयोग पान में कत्था के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग मछली पकड़ने के जाल, चमड़ा तथा डाक बैग आदि को रंगने में किया जाता है। यह वृक्ष भारत में बहुतायत में पाया जाता है। यह एक अति कीमती रंग है तथा इसका उपयोग सिल्क तथा ऊनी वस्त्रों को रंगने में भी किया जाता है।

(ii) ऑर्टोकॉर्पस : *ऑर्टोकार्पस हेटेरोफिलस* या कटहल तथा *ऑर्टोकॉर्पस* लकूचा वृक्ष के तने का मिश्रण एकचमकदार पीला रंग देता है। इस रंग को बनाने केलिये लकड़ी को छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर पानी के साथ उबाला जाता है। इस रंग का उपयोग साधुओं के गेरुये वस्त्रों को रंगने में किया जाता है। यह सिल्क पर स्थायी रंग करता है।

(iii) ब्राजीलियन रंग : यह *सीसलपीनिया सप्पन* या सप्पन की लकड़ी से प्राप्त होने वाले रंग का व्यापारिक नाम है। यह एक कीमती लाल रंग देता है जिसे ब्राजीलिन डाई के नाम से जाना जाता है। यह दक्षिण भारत में बाड़ के रूप में उगाय जाता है। इसका उपयोग फैब्रिक को रंगने में किया जाता है। कैलिको प्रिन्टिंग में यह लाल व गुलाबी रंगों के लिये प्रयोग होता है। यह इन्डीगो के साथ घुलकर बैगनी रंग देता है।

(iv) सैन्टेलिन रंग : यह *टेरोकार्पस सैन्टेलिनस* वृक्ष के तने के भीतरी भाग से प्राप्त होता है। यह पेड़ 'रेड सैन्डर्स' के नाम से प्रायः जाना जाता है। यह एक चमकीला लाल रंग होता है। इस रंग का प्रयोग चमड़ा तथा लकड़ी रंगने में होता है। फार्मेसी में भी इस रंग का प्रयोग बहुतायत में होता है। ब्राजीलिन रंग के साथ मिला कर इसका प्रयोग सिल्क तथा सूती वस्त्रों को रंगने में किया जाता है।

2. वनस्पतियों की छाल से प्राप्त होने वाले रंग:

(i) बबूल : बबूल की कुछ प्रजातियों जैसे *अकेसिया फॉरेन्सिआना, अकेसिया ल्यूकोफ्लीया* तथा *अकेसिया कोनासिना* से एक काले रंग का डाई मिलता है।

(ii) कैज्यूरिना : *कैज्यूरिना इक्विसिटीफोलिया* की छाल से हल्का लाल रंग प्राप्त होता है। इसका प्रयोग मछली पकड़ेने के जाल को रंगने में किया जाता है।

(iii) एल्नस : *एल्नस नेपालेन्सिस* तथा *एल्नस निटिडा* की छाल से काला–भूरा रंग प्राप्त होता है जिसका प्रयोग कपड़ों का रंग स्थायी करने में काम आता है।

(iv) जैट्रोफा : इसकी छाल से प्राप्त रंग का प्रयोग मछली पकड़ने के जाल को रंगने में किया जाता है।

(v) टर्मिनेलिया : यह लम्बे वृक्ष होते है इसकी विभिन्न प्रजातियों से लाल–काला रंग प्राप्त होता है। इस रंग का प्रयोग भी फैब्रिक रंगने में ही होता है।

3. पुष्पों से प्राप्त होने वाले रंग

(i) ढाक या पलास : इस पेड़ के फूलों से चमकदार पीला रंग मिलता है। यह फूलों से प्राप्त होने वाली सबसे प्रचलित डाई है। पलास के फूल सूखने पर एक अस्थायी पीला रंग देते है। इसमें फिटकरी तथा कोई क्षार (चूना) मिलाने पर रंग गाढ़ा हो जाता है। इस रंग का प्रयोग साड़ी तथा दूसरे सूती तथा सिल्क के कपड़ों को रंगने में किया जाता है।

(ii) टून : यह लाल रंग *टूना सीलिएटा* के फूलों से प्राप्त होता है। यह एक प्रचलित रंग है जो सूती तथा सिल्क, फैब्रिक को हल्का पीला रंग देता है। यह रंग स्थायी होता है।

(iii) हरसिंगार : पौधे के फूलों से एक सुन्दर नारंगी या सुनहला पीला रंग प्राप्त होता है। यह फूलों के डंठल से मिलता है। इसका प्रयोग अल्कोहलिक पेय तथा अन्य खाद्य पदार्थों में किया जाता है। होली के अवसर पर इस प्राकृतिक रंग का प्रयोग गाँवों में प्रचलित है।

(iv) केसर : यह कश्मीर तथा नीलगिरी की पहाड़ियों में पाया जाता है। इसके नीले फूलों के अन्तः भाग से एक सुगन्धित पीला रंग मिलता है। एक ग्राम केसर लगभग 100 फूलों से प्राप्त होती है। यह डाई पानी तथा अल्कोहल में आसानी से घुल जाती है। इसका उपयोग कपड़ा रंगने के साथ, दवा, कन्फेक्शनरी तथा अन्य खाद्य पदार्थों को रंगने में किया जाता है।

4. वनस्पतियों के फलों से प्राप्त होने वाले रंग

(i) कामेला या कामिनी : यह एक व्यवसायिक डाई है जो *मैलोटस फिलपेन्सिस* नामक पौधे के फलों से प्राप्त होती है। यह फलों के बाहरी सतह पर पायी जाने वाली लाल ग्रन्थियों से प्राप्त होता है। इन फलों को कपड़े के बड़े बैग या बोरों में इकट्ठा करके उसे पीटते हैं, जिससे यह डाई अलग हो जाती है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से सिल्क रंगने में किया जाता है। चमकीला नारंगी या लौ का रंग इस डाई से मिलता है। अन्य रसायनों के साथ मिलाने पर यह लाल रंग देता है। इसका प्रयोग, तेल साबुन, सौन्दर्य क्रीम तथा पेय पदार्थों को रंगने में किया जाता है।

(ii) बिक्सा : *बिक्सा ओरेलाना* वनस्पति के बीजों से यह डाई प्राप्त होती है, जिसका व्यवसायिक नाम अनॉटा है। बीजों में बिक्सिन नाम का यौगिक पाया जाता है जो एक रंजक का कार्य करता है। एक चमकदार पीला रंग लगभग 10–12 प्रतिशत की मात्रा में बीजों से मिलता है। इसका मुख्य उपयोग कैलिको प्रिटिंग तथा वूलेन व सिल्क फैब्रिक को रंगने में किया जाता है।

5. जड़ों से प्राप्त होने वाले रंग

(i) बरबेरिस : *बरबेरिस अरिस्टेटा* की जड़ों से पीला रंग निकलता है जो देश में पाया जाने वाला सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक पीला रंग है। यह पानी तथा अल्कोहल में आसानी से घुलनशील है। क्षारीय तत्व मिलाने पर यह पीले से भूरे रंग का हो जाता है। यह मुख्य रूप से मोरक्को लेदर बनाने में प्रयोग की जाती है।

(ii) अल्काबिर : यह *डेटिस्का कैनाबिना* पौधे की जड़ों से प्राप्त होता है। इसका व्यापारिक नाम अल्काबिर है। यह सिल्क, ऊन तथा फैब्रिक रंगने में प्रयोग होता है।

(iii) मोरिंडा : *मोरिंडा कोरिया* की जड़ों के छाल से लाल रंग प्राप्त होता है। इसका प्रयोग भी फैब्रिक रंगने में ही किया जाता है।

(iv) अनार : अनार की जड़ों से पीले–लाल रंग की डाई मिलती है। यह विविध वस्तुओं को रंगने में प्रयुक्त होती है।

(v) रुबिया : यह पहाड़ों पर पाये जाने वाले पौधे रुबिया से मिलता है। यह लाल रंग का होता है। इसका व्यवसायिक नाम मंजीत है।

6. वनस्पतियों की पत्ती से प्राप्त होने वाले रंग

(i) मेंहदी : यह पौधे की पत्तियों से प्राप्त होता है। यह नारंगी रंग देता है तथा हेना डाई के नाम से प्रचलित है। यह एक स्थायी रंग है तथा फैब्रिक व चमड़ा उद्योग में

उपयोगी है। इसका प्रयोग बाल, हाँथ, नाखून आदि रंगने में किया जाता है। भारतीय नारियों हेतु यह विवाह अवसरों पर विशेष महत्व की है।

(ii) नील : यह पौधे की पत्तियों से मिलता है। यह सभी प्राकृतिक रंगों का राजा कहलाता है। यह गाढ़े नीले रंग का है। रंग के स्थायित्व व शक्ति के कारण यह बहुउपयोगी है। इन्डीगो पाउडर प्राप्त करने के लिये पत्तियों को पुष्पन के पूर्व ही छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर पानी के साथ 25–30^0 पर गर्म करते है। चूना प्रवाहित करने पर नीले क्रिस्टल के रूप में इन्डीगोटिन अलग हो जाता है। यह प्राचीनतम रंग है, जिसका प्रयोग 5000 वर्ष पुराने मिस्र ममी वस्त्रों को रंगने में किया जाता था।

(iii) लाख : यह एक महत्वपूर्ण लाल रंग (रेजिन) है जो लैसिफर लाक्का नाम के कीड़े से प्राप्त होता है। यह एक व्यापारिक महत्व का रंग है। यह कीड़ा मुख्यतः पलास, कुसुम, बेर, बबूल या शीशम प्रजातियों पर आश्रित होता है। लाख एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक रेजिन पदार्थ है। इसका प्रयोग प्लास्टिक, ग्रामोफोन रिकॉर्ड, विद्युत उपकरणों, चमड़ा तथा काष्ठ उद्योगों में होता है। यह बहुपयोगी महत्व का है जिसकी व्यवसायिक खेती भारत में वृहद स्तर पर की जाती है।

(iv) कुछ समय पूर्व सागौन की नई पत्तियों से भी एक नारंगी रंग का स्थायी डाई प्राप्त हुआ है, जिसका उपयोग भी विभिन्न रूपों में हो रहा है। हमारे देश की प्राकृतिक सम्पदा अकूत गुणों से भरपूर है। सभी वनस्पतियाँ तथा जीव–जन्तु विविध प्रकार के गुणों से सम्पन्न है। वर्तमान परिदृश्य में आवश्यक है कि आर्थिक महत्व की उन वनस्पतियों व उत्पाद पर शोध किया जाये जिनसे नये प्राकृतिक रंगों के विकास के साथ साथ अन्य महत्व वाले पौधे जैसे औषधीय, सुगंधी, खाद्य, तेल, गोंद व रेजिन आदि उत्पादों का भी प्रसार हो सके।

मर्ते हैं आर्ज़ू में मर्ने की
मौत आती है पर नहीं आती।

— **'गालिब'**

पुस्तकालय संसाधनों का डिजिटल वातावरण में बचाव

अनुराधा भाटी
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

पुस्तकालयों की प्रचलित संकल्पना जो कि पूर्णतया प्रिन्ट मीडिया पर आधारित थी वह सूचना तकनीकी की मदद से डिजिटल/इलैक्ट्रोनिक स्वरूप की ओर बढ़ रही है। प्रलेखों को अधिक अवधि तक संरक्षित व सुरक्षित रखने हेतु नवीनतम मीडिया व तकनीकी को प्रयुक्त करना चाहिए। भारत में सरकार तथा कई संस्थाऐं धीमी गति से डिजिटल रूप में प्रलेखों के बचाव की आवश्यकता की ओर रूचि रख रही है। यहां पुस्तकालय संसाधनों का डिजिटल वातावरण में बचाव के उपाय तथा उससे होने वाले लाभ पर भी प्रकाश डाला है।

आधुनिक समाज सूचनाओं पर आधारित है। अतः सूचना को मनी, मैट्रीयल्स् व मैन पॉवर के बाद चतुर्थ संसाधन माना जाता है। वर्तमान युग में सूचना को न केवल संसाधन ही माना जाता है वरन् यह तृतीय संसार की आधारभूत आवश्यकता व एक उत्पाद माना जाता है। इलैक्ट्रोनिक सूचना पद्धति के विकास ने बड़ी भारी मात्रा में पुस्तकालयों को प्रभावित किया है और पुस्तकालय विज्ञान से जुड़े व्यक्तियों को शीघ्रता से व प्रचुर मात्रा मे सूचना प्रदान करके तथा सूचना की इस बढ़ती हुई बाढ़ में से शीघ्र सूचना प्रदान करके मदद् कर रहा है। पुस्तकालयों की प्रचलित संकल्पना जो कि पूर्णतया प्रिन्ट मीडिया पर आधारित थी वह सूचना तकनीकी की मदद से डिजिटल/इलैक्ट्रोनिक स्वरूप की ओर बढ़ रही है।

प्रलेखों को लम्बे समय के लिए संरक्षित रखने हेतु नवीनतम मीडिया व तकनीकी को प्रयुक्त करना चाहिए। डिजिटल संसाधनो के निर्माण का प्राथमिक तरीका यह है कि प्रकाशित प्रचलित पुस्तकों को डिजिटाइज किया जाए। डिजिटल स्वरूप में बदलने की प्रक्रिया का अभिप्राय यह है कि प्रकाशित पाठ्य, हस्तलिखित पुस्तकें, छाया अथवा आवाज सहित रेकार्डिंग, चल चित्र, चित्र अथवा विडियों को डिजिटल स्वरूप में बदलना। डिजिटल आज की आवश्यकता बन गई है क्योंकि इन्टरनेट सूचना के उत्तरकालीन युग में कम्प्यूटर व संचार तकनीकी ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। डिजिटल स्वरूप में पुस्तकें रखने से प्रचलित पुस्तकालय की समस्याऐं सुलझती है, जैसे कि पुस्तक के संरक्षण, सुरक्षित रखने, संग्रह, स्थानाभाव, मल्टीमिडिया प्रलेख व दूर स्थानों से सूचना के संग्रह तक पहुँचना आदि–आदि। डिजिटल बचाव डिजिटल माध्यम के प्रलेखों का बचाव करती है जो कि डिजिटल सूचनाओं को सही वातावरण में संग्रहित रखती है और एक मान्य संग्रहण व उनको प्रयोग में लाने की प्रक्रिया को अपनाती है तथा प्राचीनकाल के माध्यमों से संग्रहण किए गए प्रलेखों को नष्ट होने से पूर्व ताजा नए माध्यमों को अपना कर सुरक्षित रखती है। डिजिटल बचाव विभिन्न तरीकों से सम्बन्धित है जिसमें यह तय करना कि किसको डिजिटल रूप में परिवर्तित करना है, पाठ्य व छाया के लिए ढाँचा तैयार करना तथा छाया की गुणवत्ता व कीमत तय करना आदि–आदि सम्मिलित है। डिजिटल बचाव विभिन्न तरीकों से डिजिटल मैट्रीयल्स् को भविष्य में जीवित रखने से सम्बन्धित है। सी.डी.–रोम पर सभी इलैक्ट्रोनिक से लेकर आन लाइन डाटा बेस तक के प्रलेख इसमें सम्मिलित है और डिजिटल ढाँचे में प्रयोगात्मक डाटा के संग्रह को शीघ्रता से बदलती तकनीकी व संगठनात्मक ढाँचे के तत्वों के सम्मुख प्रदर्शन पुनः प्राप्त करने व डिजिटल संग्रह का उपयोग करने योग्य रखता है।

डिजिटल बचाव (Digital Preservation)

डिजिटल बचाव से अभिप्राय योजना, संसाधनो का आवंटन व बचाव के तरीकों को लागू करना है और मैट्रीयल्स् के डिजिटल रिकार्डिंग को निश्चित करने के लिए नवीन तकनीकियाँ अपनाना आवश्यक है और शीघ्रता

से बदलती तकनीकियों व संगठनात्मक ढाँचों के तत्वों के सम्मुख पुनः प्राप्त करने व डिजिटल संग्रह का उपयोग करने योग्य रखता है। बचाव का यहाँ सामान्य अर्थ यह है कि किसी भी वस्तु को हानि, क्षति, नाश और इसी प्रकार के अन्य हानिकारक प्रभावों से सुरक्षित रखना। बचाव का उद्देश्य वर्तमान व भविष्य की पीढ़ी के द्वारा सूचना को उपयोग में लाने के लिए बचाव/सुरक्षा निश्चित करना है।

वर्तमान दशकों में कई पुस्तकालय व पुरातत्व कार्यालयों ने औपचारिक बचाव योजना प्रचलित पदार्थों/मैट्रीयल्स् के लिए स्थापित की है जिसमें बचाव के लिए संसाधनों का लगातार आवंटन, पदार्थो की क्षति को रोकने के लिए रोकथाम के उपाय, चुनिन्दा पदार्थो की उपयोगिता को पुर्नःजीवित रखने के लिए उपाय और पूर्ण रूपेण योजना के प्रोग्राम में बचाव की आवश्यकता व उसके लिए जरूरी आवश्यक वस्तुओं की मांग को सम्मिलित किया है।

बचाव के उद्देश्य (Objective of Preservation)

क्षति के कारणों के प्रभाव जैसे तापमान, प्रकाश, आर्द्रता, बाढ़, आग, फंगस्, बैक्ट्रिया, हानिकारक कीड़े, पर्यावरण, मिट्टी व महत्पूर्ण कारण जिसे ''मानव'' कहा जाता है, को कम करने के लिए। इसके अतिरिक्त बचाव करने के लिए निम्न उद्देश्य है:

(1) सूचना के ऐतिहासिक मूल्य के रख–रखाव हेतु।

(2) काम मे लेने के लिए व प्रयोग में लाने में सरल बनाना।

(3) सूचना को लम्बी अवधि तक जीवित रखने हेतु।

(4) सूचना को उपयोग हेतु संसार भर में प्रदान करना।

बचाव की ओर समीप जाना (Preservation Approach)

डिजीटल बचाव का अभिप्राय पुराने मीडिया से नए मीडिया में डिजीटल सूचना की प्रतियां करने से सम्बन्धित है। यह प्रतिलिपि अथवा नया करने से सम्बन्धित है। इस प्रक्रिया में डिजिटल सूचना की सत्यता को सुरक्षित रखा जाता है। यह यहाँ स्पष्ट है कि किसी एक माध्यम का जीवनकाल उस पर निश्चित होता है कि सूचना जिस माध्यम से रेकार्ड की गई है, बिना हानि के सुरक्षा से संग्रहित रहें। पहले वाला अभिगम अधिक लकीर का फकीर है अर्थात् नियम के बदलने का विरोध करने वाला है जबकि मौलिक तकनीकी वातावरण डिजिटल सूचना को भविष्य में सुरक्षित रखता है। यह अभिगम दो बचाव की तकनीकियों में विभाजित है। प्रथम तकनीकी से सभी कम्प्यूटर हार्डवेयर की कार्यरत् प्रतिरूपों और सॉफ्टवेयर के प्लेटफार्म्स का भविष्य के उपयोग हेतु बचाव किया जाता है। द्वितीय तकनीकी नवीन कम्प्यूटर पद्धति के प्रोग्राम को प्राचीन अप्रचलित प्लेटफार्म्स और ऑपरेटिंग सिस्टम्स् को प्रतिस्पर्धा के रूप में मांग करने पर तैयार करती है।

बचाव के लिए विभिन्न मिडिया के प्रकार (Various Media for Preservation)

(अ) माइक्रो फार्म मीडिया (Micro Formv Media)

(1) माइक्रो फिल्मीईंग

(2) माइक्रो फीश

(ब) मैगनेटिक मीडिया (Magnetic Media

(1) हार्ड डिस्क (40 जी.बी. व उससे अधिक)

(2) लोपी डिस्क (100 एम.बी. व अधिक)

(3) कार्टरीज टेप डिस्क (सी.टी.डी., 40 जी.बी. व अधिक)

(स) आप्टीकल मीडिया (Optical Media)

सी.डी. रोम (600 एम.बी.) पाठ्य सम्बन्धी सूचना लेकिन आजकल सिर्फ मल्टीमीडिया डिजिटल सीडीज अधिक विस्तृत रूप में उपयोग में आ रही है। इसकी संग्रहण क्षमता भी कई गुणा बढ़ गई है।

(द) नेटवर्किंग मीडिया (Networking Media)

अधिक लम्बी अवधि व पूर्ण संसार भर में उपयोग हेतु इंटरनेट सूचना के बचाव हेतु एक सस्ता व मितव्ययी माध्यम है। तीन प्रकार के महत्वपूर्ण तरीके है, वे हैं बुलेटीन बोर्ड, वेबसाईट व पोरटाल जिन्हें संसार भर में सूचना के बचाव व चारों ओर फैलाने हेतु उपयोग में लिए जाते है।

बचाव तकनीक का चुनाव (Selection of Preservation Technique)

प्रत्येक बचाव की तकनीक अपने–अपने गुण व अवगुण रखती है। इनका उल्लेख निम्न तालिका में दर्शाया गया है : के अन्दर बनाऐं हुए विभिन्न सुरक्षा के उपायों की इजाजत देता है जो एक उपयोगता को संस्करण, डाऊन लोडिंग अथवा यहाँ तक की प्रकाशित करने से रोकता है।

तकनीकी	गुण	अवगुण
प्रतिस्पर्धा	देखने व महसूस करने का रख–रखाव	प्रतिस्पर्धा के विवरणों का निर्मित करने की जटिलता। सूचना की अधिकांश मात्रा जिसका बचाव करना चाहिए। सूचना तक पहुँचने के लिए आर्काइव सॉटवेयर की आवश्यकता
एक स्थान से दूसरे	मौलिक रूप से लागू	सूचना के समीप में पहुँचने का सक्रिय सहयोग। सूचना स्थान को जाना रखाना आवश्यक नहीं के पतन को लम्बी अवधि के लिए बचाने हेतु आवश्यक कीमत। मेटाडाटा के बचाव का अभाव आर्काइवस्टस् के पक्ष में लगातार परिश्रम के लिए आवश्यकता
एक के भीतर दूसरा रखना (Encapsulation)	सूचना बचाने की क्रिया को बनाए रखना	फोरमेट के बारें में ज्ञान को संरक्षित रखना। पद्धति को डिजिटल सूचना को प्राप्त करने की आवश्यकता

बचाव के लिए प्रक्रिया (Process for Preservation)

पुस्तकालय संग्रह का बचाव सूचना तकनीकी के द्वारा एक आसान कार्य है यदि सभी आवश्यक इन्फ्रॉस्ट्रक्चर एक ही प्लेटफार्म पर उपलब्ध हों। बचाव की प्रक्रिया को निम्नलिखित दो प्रक्रियाओं में विभक्त कर सकते है:

प्रलेखों को जाँचना व छाया फाईल बनाना (Scanning documents and making image file)

इस प्रक्रिया में प्रलेखों को जाँचना एक प्राथमिक प्रक्रिया है। प्रलेखों को 300 डी.पी.आई. वाले विश्लेषण से कम की मात्रा में नहीं जाँचना चाहिए। आधारभूत रूप में विश्लेषण प्रलेख की भौतिक स्थिति पर निर्भर करता है। जांच हुई छाया को आदर्श रूप में फिल्म फॉरमेटस् में संग्रहित किया जाता है जैसे कि जैपीजी, टीआईएफएफ इत्यादि। अन्तिम आऊटपूट को हल्के फॉरमेट जैसे पीडीएफ में बदल दिया जाता है। पीडीएफ फॉरमेटस्

प्रलेखों को जाँचना व पूर्ण पाठ्य फाईल्स तैयार करना (Scanning and preparing full text files)

जाँची हुई व प्रक्रियारत् छायाऐं पीडीएफ फाइल्स् में परिवर्तित होने से पूर्व, प्रक्रिया के अन्तर्गत पाठ्य व मीडिया को इमेज फाइल्स् से पृथक करता है। इसकी अगली प्रक्रिया जो कि एक महत्वपूर्ण बात है और वह यह है कि गलतियों को ठीक करना और ऑप्टीकल करेक्टर रिकोगनीऐशन ओ.सी.आर. प्रक्रिया की सहायता से टैक्स्ट फाइल्स् को गलतियों रहित बनाता है। यह प्रक्रिया प्रूफ रीडिंग है और पाठ्य फाइल्स् की गुणवत्ता की जाँच पड़ताल करने में लिप्त रहती है। उपरोक्त सभी प्रक्रिया के पूर्ण होने पर पाठ्य को मार्कअप लैंग्यूऐज जैसे एक्सएमएल, एचटीएमएल इत्यादि– इत्यादि में बदला जाता है मय सम्पर्क टेगींग (Tagging) जो कि डाटाबेस को किसी भी वेब एप्लीकेशन्स् के साथ जोड़ने योग्य बनाता है।

भारत में डिजीटल वातावरण में पुस्तकालय के संसाधनों के बचाव के लिए प्रवृतियां (Trends in India for preservation of Library Resources in Digital Environment)

भारत में, अभी तक वित्तीय प्रावधान और डिजिटल मेटीरियल्स् के लिए धन का आवंटन एक महत्वपूर्ण स्थिति तक नहीं पहुँचा है। भारत में पुस्तकालयों में डिजिटल संसाधनों के बचाव के मुख्य निम्न तरीके अपनाऐं जाते है:

(1) नीति निर्माण में मार्गदर्शन प्रदान करना जो कि डाटा निर्माण के उद्देश्यों के लिए यथोचित हो।

(2) डिजिटल प्रोग्राम्स् की डिजाईनिंग में ऐजेन्सीज को सहायता पहुँचाना, जिससे उसकी कीमत प्रभावशालीता कम से कम हो और संसाधनों के जीवन चक्र के उपरान्त उपयुक्तता बनाई/रखी जा सकें।

(3) संस्थाओं और सूचना केन्द्रों के मध्य चक्रव्यूह रचना जैसी योजना सूचित करना जो डिजिटल सूचना के संसाधनों का संग्रह अथवा निर्माण में विनियोजन करते है और उन संसाधनो की लम्बी अवधि तक जीवित रखने की निश्चितता का कोई उपाय निकालते है।

(4) अध्ययन में पहचानी गई ऐजेन्सीज और विभिन्न स्टेकहोल्डर्स (Stakeholders) के मध्य सहयोग के लिए आवश्यकता, निर्भरता व चक्रव्यूह रचना वालें मामलों के लिए जागरूकता बढ़ाने में मदद करना।

(5) किसी मामले के अध्ययन को दूसरें मामलों के साथ जोड़ना तथा स्टेण्डर्डस्, वर्तमान शोध व कार्यान्वित प्रोजेक्टस् पर साहित्य/पाठ्य सामग्री को जोड़ना व चुनना जो किसी विशिष्ट सेक्टर्स पर आगे मार्गदर्शन प्रदान करने में मिडिया व प्रभावशाली ढंग से नीति को फलीभूत करने से सम्बन्धित मामलों और डिजिटल करने व बचाव की योजना बनाने वाले को सहयोग प्रदान करे।

बचाव से लाभ (Advantages of Preservation)

पुस्तकालय संसाधनों का डिजिटल वातावरण में बचाव से कई लाभ है। इससे कोई भी पुस्तक जो आऊट ऑफ प्रिन्ट है उसका बचाव मल्टीमीडिया से किया जा सकता है। इसके साथ ही दुर्लभ पुस्तकों की प्रतियाँ करके डिजिटल वातावरण में बचाव के साधन को अपना कर सुरक्षित रखा जा सकता है। डिजिटल वातावरण में पुस्तकालयों के संसाधनो के रखने के लिए स्थान का अभाव नहीं रहता है तथा अभिलेखों के समीप तक पहुंचना आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रलेखों को आसानी से हैण्डल किया जा सकता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषण आसानी से किया जा सकता है। समय की बचत आसानी से हो सकती है तथा लागत भी कम पड़ती है। सबसे अधिक लाभ मानव शक्ति मेन पावर का बहुत कम खर्च होना है।

पुस्तकालयाध्यक्षों, सूचना वैज्ञानिकों अथवा प्रलेखन अधिकारियों को महत्वपूर्ण व नियमित रूप में प्रयोग में आने वाले प्रलेखों के बचाव हेतु मल्टीमीडिया तकनीकी को अपनाना आवश्यक है। भारत तथा संसार भर में पुस्तकालय के संसाधनों के बचाव हेतु शोध, विकास व उन्हें फलीभूत करने की बहुत आवश्यकता है जिससे कि प्रलेख का छोटा से छोटा भाग भी डिजिटल रूप में बचाया जा सकें। भारत में पुस्तकालयों का डिजिटल रूप में प्रलेखों के बचाव में बहुत समस्याऐं आ रही है जैसे कि वित्त का अभाव, विव्दता वाली प्रौपर्टी के अधिकार के मामलें, कर्मचारियों और पैतृक संस्थाओं का इस बाबत् कम रूझान आदि–आदि। अब भारत में सरकार तथा कई संस्थाऐ धीरे–धीरे डिजिटल रूप में प्रलेखों के बचाव की आवश्यकता की ओर रूचि रख रही है जैसे विश्वविद्यालयों अनुदान आयोग–इन्फोनेट व अन्य ऐसे प्रोग्राम जो डिजिटाईजेशन व डिजिटल रूप में प्रलेखों के बचाव कार्य में लिप्त है।

भारत का राष्ट्रीय वृक्ष : वट

अमीन उल्लाह खान
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

वट वृक्ष अत्यधिक विशाल व चिरायु होता है। यह 25 से 30 वर्ग फुट क्षेत्रफल में फैला हुआ परिलक्षित होता है तथा उतनी ही जड़ भूमि के अंदर फैलती रहती है। यह उष्ण जलवायु के साथ–साथ 5 हजार फुट पर भी लघु वृक्ष के रुप में देखा जा सकता है। यह दूसरे वृक्षों को अपने नीचे उत्पन्न नहीं होने देता। इसके पत्ते गोल तथा अंडाकार होते है तथा नये–नये सींग वट जैसी कलिकाओं में लिपटे हुए निकलते है। फल अव्रन्त, अर्धगोलाकार, सूक्ष्म रोमिल तथा पकने पर सिंदूरी होते है। इसकी शाखाओं से लाल रंग के अंकुर निकलते हैं जिन्हे जटा कहा जाता है।

वट वृक्ष भारत के वन प्रदेशों में उपहिमालयी क्षेत्र और डेकन तथा दक्षिणी भारत के पर्णपाति वनो में सर्वत्र मिलता है। ये उद्यानों तथा मार्ग विथियों में छांया हेतु लगाए जाते हैं। इसका आकार वृहत हो जाता है और पत्तियों का शिखर कभी–कभी तीन सौ से छः सौ मीटर की परिधि में फैल जाता है। शुष्क स्थानों मे यह कुछ समय के लिये ही पर्ण रहित होता है। अन्यत्र यह सदापर्णी है।

वट वृक्ष के फल अभाव के दिनों में खाए भी जाते हैं। पक्षी तथा बंदर इन्हें रुचिपूर्वक खाते हैं। पत्तियाँ चारेहेतु काटी जाती हैं। वृक्ष की छाल तथा वायवीय जड़ों से मोटा रस्सा तैयार किया जाता है। छाल में 11 प्रतिशत टेनिन होता है। बरगद भारतीय लाक्षाकीट के लिये अभिलेखित परपोषियों में से एक है। पूरे वृक्ष में दूधिया रस भरा होता है जो इसको जीवन देता है। यह आर्थिक दृष्टि से भी कम महत्व नहीं रखता। इसकी लचीली लकड़ी जो हल्की भी होती है का तंबुओं, बेहगियों के हत्थों के लिये उपयोग बहुतायत से होता है। कागज निर्माण में भी इसको काम में लिया जाता है।

वट वृक्ष को विभिन्न भाषाओं में भिन्न–भिन्न नाम दिये गये हैं। संस्कृत में वट, हिंदी में बड़, पंजाबी तथा ऊर्दू में बरगद, फारसी में दरख्ते रेशा, अरबी में जातुले जेब्बा, अंग्रेजी में बेनियन ट्री और लैटिन में *'फायकस बैंगालैंसिस'* कहा जाता है। हमारे धर्म ग्रन्थों में इसे बअड़ (बड़ा युवा) के रुप में बहुत प्रचारित किया गया है। इसकी उम्र अधिक होने के कारण ही रामायण में इसे 'अक्षय– वृक्ष' के रुप में संबोधित किया गया है।

वट वृक्ष बह्मा, विष्णु और कुबेर को अत्यधिक प्रिय है। यह अपने आप में जटाओं के कारण स्कंद पुराण में शिव का रुप माना जाता है 'अश्वत्वयरुपी विष्णुः स्याहटरुपी शिवोयतः'। सौभाग्य की आंकाक्षा रखने वाली स्त्रियां *'सावित्री वट पूजा'* बड़े धूम–धाम से करती है। सुख शान्ति हेतु पवित्र यज्ञ आदि सदैव वट वृक्ष के नीचे निष्पादित किये जाते हैं। थके–मांदे व्यक्तियों व पशु–पक्षियों के लिये वट वृक्ष आश्रय देता आ रहा है। सदियों से जारी बड़ी–बड़ी ग्रामीण सभाएँ आज भी वट वृक्ष के नीचे सम्पन्न होती हैं।

प्राचीन ग्रन्थो में वट वृक्ष को दिये गये मानवीय नाम उसकी मानव समाज से निकटता के परिचायक हैं। इतना ही नहीं महाभारत में वट की विद्यमानता के कारण स्थानों और तीर्थों के नाम भी भद्रवट, मुंजवट और स्थाणुवट आदि पड़ गये थे। भारत ही में नही बल्कि लंका, जावा, सुमात्रा, चीन, जापान, नेपाल एवं मलेशिया की जनता द्वारा भी वट वृक्ष को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

यह सहिष्णु तथा सूखासह है और हल्का पाला सहन कर सकता है। यह पक्षियों द्वारा पुरानी दिवारों या अन्य वृक्षों पर गिराए हुए बीजों द्वारा उग आता है। अतः वन वृक्षों, दिवारों तथा इमारतों का विनाशक समझा जाता है। यह कलम द्वारा भी प्रर्वधित किया जा सकता है।

वट वृक्ष के सभी हिस्से कसैले, मधुर शीतल तथा आंतो का संकोचन करने वाले होते हैं। यह पित्त और

घावों को नष्ट करने वाला है। इसके पत्ते घावों के लिये, नवीन पत्ते कुष्ठ हेतु, दूध वेदना नाशक, सूखे पत्ते कफ नाशक तथा छाल स्तंभन हेतु उपयोगी है। इसकी जड़ सुजाक के लिये भी लाभप्रद सिद्ध होती है। मधुमेह में इसकी छाल का उपयोग किया जाता है, क्योंकि यह पौष्टिक एवं शर्करानाशक है।

पीपल की भांति यह वृक्ष भी अत्यधिक ऑक्सीजन प्रदान करता है। इसकी हरियाली भी कई वर्षों तक गहरी बनी रहती है। भूमि को रोपे रखने में भी यह प्रधान भूमिका निभाता है। अतः वट वृक्ष को 'पर्यावरणीय–वृक्ष' कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वट वृक्ष निश्चय ही अनेक दृष्टि से भारतीयों के लिये महान् एवं अत्यधिक महत्वपूर्ण वृक्ष है। इसी कारण इसे भारत का 'राष्ट्रीय वृक्ष' घोषित किया गया है। अतः इसके रोपण को प्रोत्साहन देना हमारा कर्त्तव्य है।

डसने लगे हैं ख्वाब मगर किससे बोलिए
मैं जानती थी पाल रही हूँ संपोलिए

बस ये हुआ कि उसने तकल्लुफ से बात की
और हमने रोते रोते दुपट्टे भिगो लिए।

पलकों पे कच्ची नीदों का रस फैलता हो जब
ऐसे में आँख धूप के रुख कैसे खोलिए

खुशबू कहीं न जाए, ये इसरार है बहुत
और ये भी आरजू कि जरा जुल्फ खोलिए

तस्वीर जब नयी है नया कैनवस भी है
फिर तश्तरी में रंग पुराने न घोलिए

–परवीन शाकिर

मीठी जड़ी बूटी : स्टीविया

डॉ. नवीन कुमार बोहरा
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

आधुनिक भौतिकवादी युग में मानव जीवन श्रम की कमी, फल–फूल एवं अनियमित खान पान एवं दिनचर्या के चलते अनेक रोगों से ग्रस्त हो रहा है। इसी कारण डाइबिटीज (मधुमेह) रक्तचाप आदि रोग युवा वर्ग से बूढ़े सभी को होने लगे है। प्रायः इस हेतु ऐलोपेथिक दवाओं का प्रयोग किया गया है परन्तु इनके हानिकारक प्रभावों से एवं साईड इफेक्ट के कारण मानव पुनः प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वानस्पतिक औषधियों की ओर झुका है। प्राकृतिक रूप से उपलब्ध कई वनस्पतियां न केवल इन रोगों के उपचार में सहायक है वरन् इनके कोई दुष्प्रभाव भी नहीं होते हैं। ऐसी ही प्राकृतिक वानस्पतिक औषधि है ''स्टीविया''।

वस्तुतः ''स्टीविया'' को औषधि न कह कर सम्पूरक प्राकृतिक स्वीटनर कहना उचित होगा। स्टीविया एक ऐसी वनस्पति है जो मधुरता में चीनी को भी मात देती है। साधारण चीनी से ''स्टीविया'' 300 गुना ज्यादा मीठी होती है। इसी कारण इसे ''स्वीट लीफ'' या 'शुगर लीफ'' भी कहा जाता है। यह एक कैलोरीयुक्त प्राकृतिक स्वीटनर है।

इतिहास

ऐसा माना जाता है कि कई शताब्दियों पूर्व पैरागुवे और ब्राजील के ''वारानी'' नामक जनजाति के लोगों ने इस शाक पादप का पता किया था। इसे जनजाति के लोग अपनी भाषा में ''का–ही'' (मीठी जड़ी–बूटी) के नाम से पुकारते थे। ये लोग किसी खाद्य वस्तु को मीठा करने के लिए इसका प्रयोग करते थे। ''ग्वारानी'' जनजाति के लोग स्टीविया की पत्तियों का पेय बनाकर पिया करते थे। इन लोगों का विश्वास रहा है कि स्टीविया की पत्तियों में औषधीय गुण होते है और इससे बने पेय के सेवन से ह्दय और अन्य कई बीमारियों से राहत मिलती है। सन् 1931 में दो फ्रैन्च रसायन शास्त्रियों ने स्टीविया में मौजूद दो तत्वों को अलग–अलग किया। इन वैज्ञानिकों ने स्टीविया में मौजूद दो रसायनों को ''स्टीवियोसाइड़'' एवं ''रीवाडीओसाइड'' नाम दिया, जबकि 1970 से जापान के किसानों ने इसके महत्व को जानकर बड़े पैमाने पर इसकी खेती शुरू कर दी।

स्टीविया का वानस्पतिक नाम *''स्टीविया रिबुडियाना''* है यह एस्टेरेसी (सनफलावर फेमिली) कुल का सदस्य है तथा इसमें ''स्टीविओल ग्लाइकोसाईडस'' रसायन पाया जाता है, जो महत्वपूर्ण है। इसे मधुमेह रोगी चीनी के स्थान पर उपयोग कर सकते है। इसे एक बार रोपाई करने के बाद 4–5 वर्षों तक फसल प्राप्त होती रहती है। बाजार में अत्यधिक मांग होने एवं वानस्पतिक फसलों की अपेक्षा 4 से 5 गुना लाभकारी फसल होने के कारण इसकी उपयोगिता मानी जा सकती है।

खेती

इसकी खेती समुचित जल विकास वाली बलुई दोमट भूमि जिसका पी.एच. 5 से 7 में की जा सकती है। क्षारीय एवं जलभराव वाली भूमि में इसकी खेती नहीं हो सकती है। यह अर्द्ध सब टापिकल से निचले टेम्परेट क्षेत्रों में तथा 350 से 2200 मीटर ऊँचाई तक प्राकृतिक रूप से मिल सकता है। स्टीविया के पौधे के लिए अधिक समय तक प्रकाश की आवश्यकता होती है, जिससे पौधे में स्टीवियोसाइटस की मात्रा में वृद्धि होति है। अतः ऐसी जलवायु जहाँ पर दिन का अधिकतम तापमान 38 डिग्री से.ग्रे. तथा रात्रि का तापमान 40 डिग्री से.ग्रे. से कम न हो, खेती हेतु उपयुक्त मानी जाती है।

इसका प्रवर्धन बीजों एवं तने की कटिंग द्वारा किया जा सकता है। बीजो द्वारा सितम्बर–अक्टूबर में नर्सरी में 200–300 ग्राम बीज/एकड की आवश्यकता होती है। बीजों की अंकुरन अवधि 10 से 15 दिन होती है। इन्हें फरवरी–मार्च में (सिंचित क्षेत्र में) अथवा जुलाई में रोपित

करते है। काटिंग द्वारा पौधे के नये तने एवं शाखा से कटिंग तैयार कर नर्सरी मेंइ लगा देते हैं। कटिंग्स 4–5 इन्टरनोडस वाली होनी चाहिए। कटिंग्स को लगाने से पूर्व किसी फफूंदनाशक रसायन से उपचारित कर लेना चाहिए। रोपण 45 सेमी x 30 सेमी. की दूरी पर सामान्यतः किया जाता है।

स्टीविया की अच्छी फसल हेतु 18–22 टन गोबर की खाद, 110 किग्रा. नत्रजन, 45 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 45 किग्रा. पोटेशियम प्रति एकड/वर्ष मिलाना उचित रहता है। इसमें 10–20 हल्की सिंचाई /प्रतिवर्ष करना भी उपयुक्त रहता है। इस 5 वर्षीय फसल की प्रति वर्ष 3 कटाई की जा सकती है। इसकी प्रथम कटाई रोपाई के 4–5 माह बाद (फूल खिलने से पहले) तथा शेष कटाई 4 माह के अन्तराल पर की जाती हैं। कटाई के पश्चात आंशिक धूप में कटे हुए पत्तों को सुखायें तथा फिर भंड़ारित करना चाहिए। इस प्रकार 3 कटाई से लगभग 7–5 क्विंटल/ एकड/वर्ष तक सूखी पतियां प्राप्त हो सकती है।

इसके कृषि कार्यों पर लगभग 36,000 रूपये/ एकड़/वर्ष तक खर्च आता है। जबकि आय सूखी पत्तियों की दर 100 रूपये/किग्रा. के आधार पर लगभग 84,000 रूपये तक हो सकती है। इस प्रकार 48,000 रूपये/ एकड़/प्रति वर्ष की आय हो सकती है जो क्षेत्र विशेष के आधार पर अलग अलग हो सकती है।

उपयोग

विशेषज्ञों की मान्यता है कि स्टीविया मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगों को नियत्रिंत करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बात यह है कि भरपूर मिठास होने के बावजूद स्टीविया ब्लड़ शुगर को नहीं बढ़ता है। स्टीविया का ब्लड़ ग्लूकोज पर नगण्य प्रभाव पड़ता है। यह वनस्पति डाईबिटीज रोगियों के लिए प्राकृतिक स्वीटनर का कार्य करती है। इसमें कार्बोहाइड्रेट कम मात्रा में पाया जाता है। अतः इसका सेवन मोटापे से ग्रस्त लोगों के लिए भी नुकसानदेह नहीं है। इसका उपयोग दंत मंजन के रूप में एवं एग्जिमा, चर्म रोगों उदर रोगों में भी उपयोगी पाया गया है।

स्टीविया अनेक संभावनाओं से परिपूर्ण वनस्पति है। इस पर देश–विदेश में शोध कार्य जारी है जिससे इसे अधिक उपयोगी बनाया जा सके। अब डाइबिटीज के रोगी भी मीठा खा सकते है – स्टीविया के रूप में।

सहर का नूर भी है, रात की सियाही भी
हयातो–मौत की तस्वीर खींचती आँखें

– अज्ञात

स्तनधारियों का साम्राज्य

डॉ. के.पी. सिंह
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

हमारी पृथ्वी पर विकास के क्रम में भौगोलिक संरचनाओं, जीवन की दशाओं एवं वातावरण में कई परिवर्तन हुए है। लाखों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर सरीसृप (रेटटाइल्स) वर्ग के प्राणियों जैसे डाइनासोर का प्रभुत्व था वहीं आज इस ग्रह पर मानव का साम्राज्य हैं। पृथ्वी पर स्तनधारियों की 4500 से अधिक प्रजाति मौजूद है। विश्व के सबसे बड़े प्राणी के रूप में प्रसिद्ध व्हेल भी स्तनधारी वर्ग से ही सम्बन्धित है। स्तनधारी अथवा मैमेलिया रीढ़धारी (वर्टीब्रेट्स) प्राणियों से सम्बन्धित एक वर्ग है। इस वर्ग के प्राणियों का प्रमुख लक्षण है कि यह अपने शिशु के पोषण हेतु दुग्ध उत्पन्न कर सकते है। इसके लिए इनके शरीर में विशेष ग्रथियाँ होती है जिन्हें स्तन कहा जाता है। स्तनधारियों का एक प्रमुख लक्षण उनकी त्वचा पर बाल एवं रोएं होना भी है। प्रकृति ने स्तनधारियों में शरीर के तापमान को स्थिर रखने के लिए विशेष व्यवस्था की है। स्तनधारियों में श्वसन और रक्त प्रवाह के लिए पूर्ण विकसित फेफड़े, हृदय और डायफ्राम होता है। अन्य रीढ़धारी प्राणियों की अपेक्षा विकसित मस्तिष्क के कारण स्तनधारियों में सीखने – समझने की क्षमता तेज होती है। सभी स्तनधारियों में दाँत पाये जाते है जो अपनी कार्यक्षमता के अनुसार अलग – अलग रूप में विकसित हुए है। वैज्ञानिकों के अनुसार स्तनधारियों का विकास तीन भागों ये प्लैसेन्टल, मार्स्यूपियल्स और मोनोट्रीम्स के रूप में हुआ।

प्लैसेन्टल मैमल्स

स्तनधारियों का पहला एवं सबसे बड़ा भाग प्लैसेन्टल मैमल्स का है जिसमें शिशु पूर्ण रूप से माँ के शरीर में विकसित होता है माँ के गर्भ में एक नलिका द्वारा शिशु को पोषक पदार्थ मिलते रहते है जिसे प्लैसेन्ट कहते है जैसे मनुष्य, खरगोश, हाथी,बिल्ली, चूहा आदि। मार्स्यूपियल्स मैमल्स के बाद पैदा हुए प्लैसेन्टल मैमल्स तेज दिमाग के कारण भोजन एवं जीवन के संघर्ष में उन पर हावी होने लगे, परन्तु मुख्य भूमि के कटे होने के कारण प्लैसेन्टल मैमल्स आस्ट्रेलिया नहीं पहुँच सके अन्यथा पूरी दुनियां की तरह आस्ट्रेलिया से भी मार्स्यूपियल्स का सफाया हो जाता इस प्रकार प्रकृति ने एक बार तो इन्हें विनाश से बचा लिया।

मर्स्यूपियल्स मैमल्स

प्लैसेन्टल मैमल्स के बाद स्तनधारियों का दूसरा भाग मार्स्यूपियल्स मैमल्स के नाम से जाना जाता है। कंगारू, वॉम्बबैट्स, पाऊच्ड माईस और की आला जैसी प्रजातियों वाले मार्स्यूपियल्स मैमल्स ज्यादातर आस्ट्रेलियाई महाद्वीप में पाये जाते है। इनकी दो प्रजातियाँ दक्षिणी अमेरिका और एक उत्तरी अमेरिका में पाई जाती है। प्लैसेन्टल मैमल्स पूर्ण विकसित शिशुओं को जन्म देते है जो कि जन्म के कुछ घंटों बाद गतिविधियाँ शुरू कर देते है वहीं मार्स्यूयियल्स मैमल्स के शिशु जन्म के समय अल्पविकसित होते है। गर्भ से निकलने के बाद इनका माँके पेट से जुड़ी एक थैली (मार्स्यूयियम) में होता रहता है। मार्स्यूयियल्स मैमल्स में पूरे जीवन काल में दाँतों का केवल एक ही सेट रहता है वहीं प्लैसेन्टल मैमल्स में यह दो बार बदलता हैं।

मोनोट्रीम्स मैमल्स

स्तनधारियों का एक भाग ही अण्डे देता है जिसे मोनोट्रीम्स मैमल्स के नाम से जाना जाता है। आज पृथ्वी पर मोनोट्रीम्स मैमल्स की केवल तीन प्रजातियाँ प्लैसेन्टल, एशाइडना और ऐन्टईटर पायी जाती है। यह स्तनधारियों का दनात्र विहीन वर्ग है लेकिन इसमें शिशुओं को दुग्ध पिलाने एवं रोयेदार त्वचा जैसे स्तनधारियों के प्रमुख लक्षण पाये जाते है। इन सभी का प्राकृतिक निवास स्थान आस्ट्रेलिया एवं न्यूगिनी द्वीप समूह है। मोनोट्रीम्स को स्तनधारियों और सरीसर्प के बीच की कड़ी माना जाता है। मोनोट्रीम्स मैमल्स में भोजन की तलाश हेतु चपटी चोंचनुमा थूथनी होती है।

जंक फूड और बिगड़ता स्वास्थ्य

श्रीमती सीमा ठाकुर
भा. वा. अ. शि. प., देहरादून

पुरानी कहावत है कि जैसा खाओगे अन्न, वेसा रहेगा मन। इसका तात्पर्य है कि हमारे खान–पान का सीधा असर हमारे मन पर पड़ता है। स्वस्थ मानव के लिए भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटस, खनिज लवण, वसा तत्व होने आवश्यक होते हैं। स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक और स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों का चयन और निर्माण समय लगने वाला काम है किन्तु आधुनिक कम्प्यूटर युग में मनुष्य के पास आधुनिकतम उपकरण तो हैं, केवल समय नहीं है। अतः आज का मानव हर वस्तु तत्काल चाहता है और इसी का परिणाम ह जंक फूड।

जंक फूड आज की भागमभाग भरी जिन्दगी में एक सहज उपलब्ध विकल्प बनकर आया है जिसे उपलब्धता, विज्ञापन और फैशन की चकाचौंध ने शहरी ही नहीं वरन ग्रामीण परिवेश में भी सहर्ष स्वीकार्य बना दिया है। आजकल प्रायः पति–पत्नी दोनों ही कामकाजी होते हैं फलस्वरूप उनके पास समय कम होता है जिसे वे किसी भी कीमत पर रसोई में ही नहीं नष्ट कर देना चाहते हैं अतः जंक फूड ही एक सहज उपलब्ध विकल्प बचता है। बच्चे हो जाने पर समय का और भी अभाव हो जाता है अतः इस पर निर्भरता बढ़ती जाती है। एक ओर व्यस्त जीवन दूसरी ओर घर बाहर हर ओर विज्ञापनों का दबाव। क्या पत्र–पत्रिकायें, क्या होर्डिंग क्या टी. वी. सर्वत्र विज्ञापन। एक सर्वे के अनुसार केवल मैकडानल्ड हर वर्ष लगभग 500 मिलियन डालर विज्ञापन पर खर्च करता है। इसका प्रभाव सब पर पड़ता है किन्तु बच्चों पर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। बच्चा टी. वी. पर जो देखता है सोचता है कि यही सब सच है और उसी को पाना चाहता है। अतः माताएं चाहते हुए भी अपने बच्चों को पारंपरिक भोजन नहीं दे पाती हैं जिसकी वजह से भी जंक फूड का भारतीय परिवेश में बहुत प्रचलन हो रहा है। अमेरिका में हुए सर्वेक्षण से पता चला है कि वहां पर 6 से 19 साल तक के बच्चे अधिक मोटे हैं तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली पब्लिक स्कूल के 10 से 14 साल के 53% बच्चे जंक फूड नियमित रूप से सेवन करते हैं।

ऐसे आहार में पर्याप्त पोषक तत्वों का भारी मात्रा में अभाव होता है। पोषक–तत्वों के अभाव से ही आज मिर्गी, खून की कमी, मोटापा, रक्त चाप, हृदयरोग इत्यादि बीमारियाँ फैल रही हैं। चॉकलेट, कोका–कोला इत्यादि में भी जो रंग व उसको बचाने वाले पदार्थ (Preservatives) इस्तेमाल किये जाते हैं वे शरीर के लिए हानिकारक होते हैं। अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि पेप्सी, कोक तथा अन्य जंक पेय पदार्थों से हड्डियाँ कमजोर होती हैं। बहुत से लोग यह भी कहते है कि यदि इसको फ्लश में डाल दिया जाये तो फ्लश ऐसे साफ होता है जैसे तेजाब से। जंक फूड से बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही फर्क नहीं पड़ता अपितु उनके मानसिक स्वास्थ्य पर भी फर्क पड़ता है। बच्चों के स्कूल के दिन पढ़ाई के मामले में बहुत चुनौतीपूर्ण होते हैं, जब बच्चों को शारीरिक व मानसिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और उन्हें पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है। ऐसे में उन्हें मिलता है जंक फूड। जिससे उनका स्वास्थ्य चौपट होता है और वे सारे जीवन किसी न किसी बीमारी के शिकार बने रहने को विवश हो जाते हैं।

यह जंक फूड हमारे जीवन में कुछ इस प्रकार प्रवेश कर गया है कि इसने भारतीय रोटी–सब्जी व स्नैक, जैसे डोसा, उपमा, इडली की जगह ले ली है। आज हम भोजन केवल जीभ के स्वाद के लिए करते हैं न कि शरीर के स्वास्थ्य के लिए। आजकल ऐसी भागदौड़ मची है कि मनुष्य किसी प्रकार दो निवाले निगलता है जब कि कहा गया है कि भोजन के एक कौर को बत्तीस बार खूब चबा–चबा कर खाना चाहिए। इससे एक रोटी से भी उतना लाभ मिलेगा जितना चार रोटी खाने से मिलता है। दूसरी ओर उपलब्धता के चलते और

टी. वी. के सामने बैठे–बैठे अनायास ही बहुत से लोग अनावश्यक मात्रा में खाते हैं जबकि जितनी भूख हो उतना ही भोजन करना चाहिए। ज्यादा भोजन भी हानिकारक है। समय का अभाव बल्कि कि कहना चाहिये कि समय प्रबन्धन के अभाव के कारण हम दिन प्रतिदिन आलसी होते जा रहे है, जब कि खाने के साथ–साथ शारीरिक व्यायाम पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए जिससे शरीर में चुस्ती–फुर्ती रहे हम पूरा दिन काम कर सकें। कहते हैं कि एक सेब खाने से डाक्टर दूर रहता है मतलब यह कि हमें मौसमी फल–सब्जियों का सेवन अवश्य करना चाहिए। ठीक है आपका मन नहीं मानता, कंट्रोल नहीं रहता तो आप जंक फूड केवल महीने में एक–दो बार स्वाद के लिए खा सकते हैं लेकिन इसको रोज का खाना जैसे रोटी–दाल, सब्जी, रायता का पर्याय नहीं बना सकते।

बड़े–बूढ़े और डाक्टर कहते हैं कि प्रकृति ने सब चीजें मनुष्य के रहन–सहन, स्थान, जलवायु के हिसाब से बनाई हैं तो हमें अपनी भारतीय सभ्यता के अनुसार ही खान–पान एवं रहन–सहन को अपनाना चाहिए न कि पश्चिमी सभ्यता का यह जंक फूड।

क़ासिद के आते आते ख़त इक और लिख रखूं
मैं जान्ता हूं जो वह लिखेंगे जवाब में

–'गालिब'

मुहब्बत में नहीं है फर्क जीने और मरने का
उसी को देख कर जीते हैं जिस काफिर पे दम निकले।

–'गालिब'

आज के संस्कारहीन होते बच्चे : जिम्मेदार कौन ?

श्रीमती गीता वोहरा
भा. वा. अ. शि. प., देहरादून

आज के आधुनिक युग में परिवार विघटित होकर एकल परिवार में या नाभिकीय परिवार में बदल गये हैं जिसके परिणामस्वरूप सम्बन्धों में गरमाहट का अभाव और औपचारिकता का बोलबाला होता जा रहा है। दिनों–दिन रिश्ते अर्थहीन होते जा रहे हैं क्योंकि एक ओर पूरा समाज भौतिकतावादी अन्धी दौड़ में केवल अपने स्वार्थ को ही देख पा रहा है दूसरी ओर छोटा परिवार होने के कारण रिश्तों का पनपना ही सम्भव नहीं हो पा रहा है। पहले संयुक्त परिवार में बच्चे सौमनस्यता, सहनशीलता, सहजीविता और सहभागिता के अमूल्य सूत्रों को स्वतः आत्मसात करते हुए एक पूर्ण मानव में विकसित होते थे किन्तु अब इस की सम्भावना ही नहीं रह गयी है। ऐसे में संस्कारों के पनपने का माहौल ही नहीं बन पाता क्योंकि बच्चे प्रवचनों से नहीं दैनिक जीवन से सीखते हैं।

एक ओर पारिवारिक पृष्ठभूमि अत्यन्त सीमित हो जाती है दूसरी ओर बच्चे को हरफनमौला बनाने की माता पिता की मृगतृष्णा तथा बच्चे को हर क्षेत्र में आगे ही आगे देखने की आकांक्षा के चलते हम अपने नन्हे नौनिहालों को व्यक्ति नहीं रौबोट बनाने पर तुले हुए हैं। इस अंधाधुन्ध भागदौड़ में उसके पास समय ही नहीं बचता कि उसका स्वतंत्र विकास हो सके।

हम बच्चों को सपने नहीं देखने देते बल्कि अपने सपने और अपनी दमित अभिलाषाएं उन पर थोप देते हैं और इस प्रकार उन्हें अपनी कुण्ठाओं की विरासत भी सौंप देते हैं। हमने कभी सोचा है कि एक नन्हे बच्चे को किसी तथाकथित प्रतिष्ठित विद्यालय में प्रवेश दिलाने के लिए सुबह से रात तक विभिन्न तैयारी कराने वाले स्कूलों/शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षित करते हुए और ऐसा करें ऐसा न करें कहते हुए हम उस नन्हे से पौधे को बौनसाई तो नहीं बना दे रहें हैं। छोटे से बच्चे को टाई, ड्रैस, और 'एटीकेट' नहीं चाहिए वह तो थोड़ी सी मिट्टी में खेलने की आजादी चाहता है, वह तो आपके दुलार से भरा एक स्पर्श चाहता है, और चाहता है बाल सुलभ चेष्टाओं पर आपकी निर्मल निश्छल हँसी। लेकिन आप कहाँ दे पाते है?

तो कैसे अपेक्षा करें कि हमारे बच्चों में हमारे संस्कार पल्लवित–पुष्पित होंगे? इसके लिए आवश्यकता है तो बस एक ईमानदार आत्म–विश्लेषण की, जरूरत है तो इस बात को जानने की कि आप अपने बच्चे को जो समय देना चाहते हैं वह कैसा हो? क्योंकि बच्चे को तो मात्रा भी चाहिए और गुणवत्ता भी। और याद रखिये आपका बच्चा हर क्षण बचपन से दूर होता जा रहा है। अगर आज आप उसके बचपन को समय नहीं देंगे, तो बचपन मुठ्ठी में बन्द पानी की तरह निकल जायेगा और फिर एक कुंठित व्यक्तित्व रह जायेगा जो आपकी किसी दलील को नहीं सुनेगा और अपने जीवन की साँझ में आप तमाम संपदाओं के बीच नितान्त अकेले बैठे होंगे क्योंकि आपके बच्चे के पास तमाम चाहने पर भी समय नहीं होगा। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि यही संस्कार आपने उसमें डाले हैं। आपने उसे यही सिखाया है कि आपके पास समय नहीं है। और जब उसने सीख लिया तो फिर पछतावा कैसा ? इसलिए यही समय है, अगर आप अपने बच्चे में अच्छे संस्कार देखना चाहते हैं तो स्वयं उन पर आचरण कीजिए क्योंकि बच्चे आपके आचरण से स्वयमेव सीख जाते हैं, और एक संस्कारवान बच्चा न केवल अपने परिवार की अमूल्य सम्पदा है बल्कि वह किसी भी राष्ट्र के नवनिर्माण की आधारशिला है।

मशहूर शायरा परवीन शाकिर ने कहा भी है,

बच्चों के नन्हे हाथों को चाँद सितारे छूने दो
चार किताबें पढ़कर ये भी हम जैसे हो जायेंगे।

बढ़ती जनसंख्या राष्ट्र के विकास में बाधक

श्री विजय धवन[1] एवं श्रीमती अर्चना धवन

[1]वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

किसी राष्ट्र के अस्तित्व के लिये निश्चित भूखण्ड, भौगोलिक सीमा, व्यवस्थित शासन व्यवस्था, सरकार व संप्रभुता के साथ–साथ जनसंख्या परमावशयक है। राष्ट्र की सच्ची परिसम्पति उसकी जनसंख्या है। जनसंख्या ही उत्पादन, उपभोग एवं वितरण के लिये आधारभूत संरचना तैयार करती है। राष्ट्र के विकास की दशा व दिशा के निर्धारण में जनसंख्या का आकार, वृद्धि की दर उसकी संरचना एवं सृजनात्मक क्षमता की निर्णायक भूमिका होती है। भोजन, जल, आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाऐं आदि जैसी बुनियादी संरचनाओं की आवश्यकता के निर्धारण में जनसंख्या महत्वपूर्ण कारक है। उत्पादनकारी स्वास्थ्य क्षमता भी जनसंख्या के आकार और उसकी वृद्धि की दर से निर्धारित होती है। परन्तु ''अति सर्वत्र वर्जयेत'' की उक्ति यहां भी पूर्णतः सत्य चरितार्थ होती है असंतुलित जनसंख्या राष्ट्र के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। बढ़ती जनसंख्या राष्ट्र के विकास के गर्भ में छुपा हुआ एक ऐसा शत्रु है जो समस्त नीतिगत प्रयासों एवं योजनाओं को छिन्न–भिन्न कर देता है।

कवि के शब्दों में

जनसंख्या विस्फोट से आहत मेरा देश
अस्त व्यस्त हो रहा, बिगड़ रहा परिवेश
बिगड़ रहा परिवेश, नहीं अब संतुलन है
क्षण–क्षण बढ़ते लोग, दिन–दिन घटते वन है
भुगत रहे हैं रात दिन संघर्षो की चोट
फिर भी होता जा रहा जनसंख्या विस्फोट

यद्यपि बढ़ती जनसंख्या की समस्या विश्वव्यापी है तथापि मूलतः यह समस्या भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों एवं अविकसित तीसरी दुनिया से जुड़ी है। कुछ आंकडों के अनुसार

(1) जनसंख्या घनत्व : 1901 – 77 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर
1951 – 117 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर
2001 – 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर

(2) भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व का 2.4% है परन्तु यहां विश्व की 16–17% जनसंख्या निवास करती है।

(3) कृषि पर भार = 1950–0.89 हैक्टेयर प्रति व्यक्ति
= 1991–0.35 हैक्टेयर प्रति व्यक्ति

उपरोक्त से स्वतः ही स्पष्ट होता है कि संसाधनों पर जनसंख्या दबाव कितना बढ़ता जा रहा है।

पैंतालीस विकासशील राष्ट्रों से लिये गये दीर्घ कालिक जनसंख्या अध्ययन सम्बन्धी आंकडे दर्शाते है कि उच्च जन्म दर से गरीबी बढ़ती है और उपभोग की वस्तुओं का वितरण गरीब जनता के हक में नहीं रहता है। सामान्यतः जनसंख्या में वृद्धि की दर की तुलना में लगभग समानुपातिक दर से अर्थव्यवस्था में उन्नति नहीं होती है तो देश आर्थिक दृष्टी से काफी कमजोर हो जाता है एवं अर्थव्यवस्था के सशक्त करने के सभी प्रयास, योजनाऐं व विनियोग अर्थहीन हो जाते है। ऐसी परिस्थिति में जनसंख्या के गुणात्मक रूप का भी अधः पतन अनिवार्य तौर पर हो जाता है।

प्रख्यात कवि श्री सुमित्रा नन्दन पंत के शब्दों में ...

''अशिक्षित, निर्धन, रूग्ण, अपंग,
बढाते व्यर्थ, करूण भू भार
नरक क्यों बने न जन भू स्वर्ग
नहीं जब प्रजनन पर अधिकार''

प्रजातांत्रिक राष्ट्र होने के कारण सरकार की सबसे बड़ी प्राथमिकता व अनिवार्यता राष्ट्र के समस्त नागरिकों के जीवन के लिये कम से कम न्यूनतम बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराना है। बढ़ती जनसंख्या इसकी अवरोध खड़ा करती है।

बढ़ती जनसंख्या के कारण ही सरकार गैर योजना मदों में अत्यधिक धन व्यय करने को मजबूर है। बढ़ती जनसंख्या राष्ट्र के विकास को अपंग कर देती है। फलतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर दसवीं पंचवर्षीय योजना काल में परिवार नियोजन व अन्य कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में अत्यधिक धन, श्रम व समय व्यय होता रहा है।

एडम स्मिथ के अनुसार दीनता और निर्धनता सन्तानोत्पति के वातावरण के लिये अनुकूल होती है।

भारत के लिये यह अक्षरशः लागू होता है। दीनता व निर्धनता के साथ देशवासियों में शिक्षा का अभाव है जो जनसंख्या में वृद्धि को और भी बढ़ावा देती है। जनसंख्या व विकास में जटिल सम्बन्ध है उच्च जन्म दर व निम्न मृत्यु दर के कारण जनसंख्या द्रोपदी के चीर की तरह बढ़ती जा रही है।

1891 – 1921, में 0.19 –1% वृद्धि (वार्षिक)

1921 – 1951 में 1.22% वृद्धि (वार्षिक)

1951 से अब तक 2.13% वृद्धि (वार्षिक)

अन्त में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा जब तक हम बढ़ती जनसंख्या पर रोक नहीं लगा पाते हम पूर्ण विकसित देशों की श्रेणी में अपने को देखना यह कल्पना ही रह जायेगा। अतः जनमानस का भी यह कर्तव्य है कि वह अपनी जिम्मेदारियां समझे और जनसंख्या नियंत्रण में सक्रिय भूमिका निभाते हुये देश के विकास में अपना सर्वांगीण साथ दे। तभी इस राष्ट्रीय संकट से बचा जा सकता है।

कुछ पौराणिक तथ्य

- ऋग्वेद संहिता में 1028 छन्द हैं।
- विश्वामित्र ने गायत्री मंत्र की रचना की थी।
- द्रोणाचार्य के पिताश्री महर्षि भारद्वाज थे।
- लाक्षाग्रह की संरचना पुरोचना ने की थी।
- परशुराम ने अपने दिव्य अस्त्र द्रोणाचार्य को दिये थे।
- महाभारत के वन पर्व में रामायण की पूरी कहानी समाहित है।
- मारीच ने रावण को सीता का अपहरण न करने की सलाह दी थी।
- हनुमान की सेना के वानरों का रंग सफेद था।
- श्री रामचरित मानस 'व' अक्षर से प्रारम्भ एवं 'व' पर समाप्त होती है।
- बाल रामायण के रचयिता राजशेखर थे।

आँवलों के बगीचे में सामयिक कार्य

डॉ. नीलम वर्मा, श्रीमती संगीता त्रिपाठी एवं डॉ. संगीता सिंह
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

अमृत फल के नाम से प्रसिद्ध आँवले का प्रयोग साधारणतया गृहिणियाँ मुरब्बा, चटनी और अचार बनाने में करती हैं, लेकिन औषधीय गुणों से परिपूर्ण इस फल में विटामिन सी की मात्रा अन्य फलों की तुलना में अधिक होती है। इसलिए मुरब्बा, चटनी और अचार के अलावा इसके अनगिनत अन्य उपयोग भी हैं। यह च्यवनप्राश का एक प्रमुख अवयव है। इसके फलों को सुखाकर हरड़ और बहेड़ा के साथ त्रिफला चूर्ण बनाते हैं। त्रिफला चूर्ण का सेवन करने से सुस्ती दूर होती हैं, नेत्रों की ज्योति बढ़ती है तथा सौंदर्य निखरता है। त्रिफला चूर्ण बुद्धिवर्धक भी होता है। आँवले का रस संतरे, टमाटर आदि रसों में मिलाने से उनकी पौष्टिकता को दस गुना बढ़ाता है। इसके तेल का उपयोग चर्म रोगों में तथा बीजों का उपयोग श्वास रोगों, मधुमेह तथा बुखार में किया जाता है। इसकी छाल का उपयोग टैनिन के निर्माण में करते हैं। इसके पत्तों का उपयोग अपच तथा दस्त के उपचार में करते है। फलों का काढ़ा मुँह साफ करने व आंखों की सफाई हेतु प्रयोग करते हैं। प्रतिरोधी गुणों के कारण (antiseptic) साँप व बिच्छु के डंक के उपचार हेतु भी इसका उपयोग करते हैं।

आँवला दक्षिण एशिया का देशज है और भारत चीन, मलाया इसकी उपज के मुख्य स्थान हैं। वर्तमान में देश के विभिन्न भागों में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाने लगी है, विशेषतः उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश के किसानों ने इसे बड़े स्तर पर अपनाया है। उत्तर प्रदेश में वाराणसी और प्रतापगढ़ जिले आँवला के बगीचों के लिए प्रसिद्ध हैं। आँवला अत्यधिक सहिष्णु प्रवृत्ति का पौधा है। शुष्क प्रकृति का पौधा होने के कारण इसे न तो ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है न ही ज्यादा उपजाऊ जमीन की। यह भारी मिट्टी को छोड़ कर लगभग हर प्रकार की भूमि में आसानी से उग सकता है, वैसे इसके लिए बलुई दोमट मिट्टी बहुत उपयुक्त है। अधिक उपजाऊ भूमियों में आँवला नहीं उगाना चाहिए क्योंकि ऐसी भूमि में उगाने से इसकी वानस्पतिक वृद्धि तो अच्छी हो जाती है, परन्तु पौधों में फलत (Fruiting) कम होती है अतः इसके लिए सीमान्त एवं बंजर जमीनें ज्यादा उपयुक्त हैं। आँवला शुष्क प्रदेशों का पौधा है, हांलाकि यह लू एवं पाले से ज्यादा प्रभावित नहीं होता परन्तु प्रारम्भिक वर्षो में इसकी हिफाजत करना आवश्यक हो जाता है। यह न्यूनतम एक अंश तथा अधिकतम छियालिस अंश तक का तापमान सफलतापूर्वक सहन कर सकता है। यद्यपि यह शुष्क जलवायु में अच्छी वृद्धि करता है परन्तु आर्द्रता वाले स्थानों पर इसकी वृद्धि शुष्क स्थानों की अपेक्षा काफी अच्छी होती है। इसकी कई कलमी उन्नतशील प्रजातियाँ विकसित की गई है। इन प्रजातियाँ को उनके फलों की परिपक्वता के आधार पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है जैसे :

(1) अगेती किस्में : बनारसी, कृष्णा और एम–ए–9, एन–ए–10

(2) मध्यम किस्में : चकैया और कंचन

(3) पछेती किस्में : फ्रांसिस और एम–ए–7

आँवला के पौधे बीज से भी तैयार किए जा सकते हैं तथा वानस्पतिक विधि से भी। क्योंकि बीज से उत्पन्न होने वाले पौधों के गुण तथा आकार मातृ वृक्ष के समान नहीं होते अतः बीजू पौधे लगाने की बजाए वानस्पतिक विधि द्वारा तैयार कलमी पौधे लगाना ज्यादा लाभकारी रहता है। इस उद्देश्य से सर्वप्रथम पके हुए आँवला फलों में से बीज प्राप्त करके उन्हें पानी में तैरा कर उनकी उगाव क्षमता का परीक्षण किया जाता है। इन्हे नर्सरी में उगाने के उपरान्त जब ये चार माह के पौधे बन जाते हैं तथा इनका घेरा 8 मिलिमीटर तक हो जाता है, तब इन

पर कलम चढ़ाई जा सकती है। यह कार्य जून से सितम्बर या फरवरी–मार्च माह में किया जाना उपयुक्त रहता है। पुराने देशी किस्मों के आँवलों के वृक्षों पर भी 'टी बडिंग' करके अच्छी गुणवत्ता के पौधे तैयार किए जा सकते है। आँवला 9 x 9 मीटर की दूरी पर वर्षा ऋतु में लगाना चाहिए। अन्य फलदार पौधों की तरह 0.75 x 0.75 x 0.75 मीटर के गड्ढ़े खोद कर खूब सड़ी हुई गोबर की खाद तथा मिट्टी के मिश्रण से भर देना चाहिए। फिर पौधों को लगाना चाहिए।

अच्छी फसल के लिए यह आवश्यक होता है कि बाग की ठीक से देखभाल की जाए तथा पौधे के आसपास एवं बीच में जो खरपवतार उग आए उन्हे नियमित रुप से साफ किया जाता रहे। यथासंभव पौधे के लिए सिंचाई की व्यवस्था की जानी चाहिए। शुरुआत में 15–20 दिन में एक बार पानी दिया जाए तो इससे पौधे की सही बढ़त होगी। नियमानुसार आँवले के पौधे को 3–4 साल तक पानी उचित समय पर पिलाना चाहिए। सिंचाई के लिए ड्रिप सिंचाई पद्धति अच्छे उत्पादन तथा पानी की बचत के लिए आदर्श मानी गई है। मार्च–अप्रैल महीनों में जब आँवले के पौधों पर पीले रंग के फूल आते है उस समय इनकी सिंचाई नहीं की जानी चाहिए। जबकि फल लग जाने के बाद वृक्षों को पानी देना अनिवार्य है। गर्मी में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। आँवले में उचित मात्रा में खाद का प्रयोग करने से फूल शीघ्र ही मिलने लगते हे। आँवले में अधिक समय तक न फलने की प्रवृत्ति पायी जाती है। देहातों में बहुत से आँवले के पेड़ 8–9 साल के हो जाने तक भी फल नहीं देते और बाद में भी उनमें नियमित रुप से फलन नहीं होती। इसका मुख्य कारण उचित मात्रा में पौधों को पोषण न मिलना है। आँवले के लिए उपयुक्त खाद की आधी मात्रा जैसे ही पत्तियाँ गिरनी समाप्त हो अर्थात् जनवरी में देना चाहिए तथा शेष आधी मात्रा पेड़ों पर जब फल दिखाई पड़ने लगें अर्थात् जुलाई में देनी चाहिए। खाद को पेड़ के चारों तरफ एक मीटर चौड़ा तथा 10 सेन्टीमीटर गहरा खोदकर मिट्टी में भली प्रकार मिला देना चाहिए जिससे पौधों की जड़ों की पूरी मात्रा में खाद उपलब्ध हो सके। जैसे बनारसी किस्म के आँवला के सात वर्ष के फलत वाले पेड़ों के लिए 180–360 ग्राम नाइट्रोजन, 540–1080 ग्राम फॉस्फोरस तथा 180–360 ग्राम पोटाश उर्वरक देने की आवश्यकता पड़ती है। इससे पेड़ों में बढ़वार तथा उपज अधिक प्राप्त होती है।

आँवला की शाखाओं में भण्डारण के कारण अधिक फलत के वर्ष में शाखाएँ फूट जाती है इसलिए वृक्ष की अतिरिक्त शाखाओं को प्रारम्भ में ही काट देना चाहिए ताकि शाखाओं के टूटने की संभावना घट जाए। इसके लिए वृक्ष का मुख्य तना भूमि की सतह से 90–100 सेन्टीमीटर की ऊँचाई तक सीधा होना चाहिए। एक फलदार वृक्ष की नियमित छँटाई की आवश्यकता नहीं होती है, फिर भी कमजोर, क्षतिग्रस्त, रोगग्रस्त शाखाओं को प्रतिवर्ष काटते रहना चाहिए। जहाँ तक फलने के लिए कटाई–छँटाई का प्रश्न है, आँवले में कम से कम एक वर्ष पुरानी डाली पर ही मादा पुष्प आते हैं उसी वर्ष के डाली, जो फूल आने के समय निकलते उन पर साधारण अवस्था में फूल नहीं आते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि नई और पुरानी शाखाओं अर्थात् डालियों की संख्या 50 प्रतिशत के अनुपात में बनाए रखी जाए क्योंकि एक से तीन वर्ष पुरानी डाली पर ही मादा फूल आते हैं। यदि प्रतिवर्ष जनवरी–फरवरी के माह में पुरानी डालियों के 10–15 सेन्टीमीटर शीर्ष भाग को काट कर निकाल दिया जाए तो प्रतिवर्ष प्ररोहों की संख्या वृक्ष की आयु के अनुसार बढ़ती जाएगी और फलन में आवश्यक वृद्धि होगी।

अच्छी फसल के लेने के लिए यह भी आवश्यक है कि पौधा रोगमुक्त रहे अर्थात् उसे हानिकारक कीड़ों और बीमारियों के प्रकोप से बचाया जा सके। नीम की खली पर्याप्त मात्रा में प्रयोग करके दीमक पर नियंत्रण किया जा सकता है। आँवले में कभी कभी स्टेम बोरर, लीफ केटरपीलर, एफिड, शूट गॉलमेकर व अन्य कीड़े लगते हैं। इन्हें जैविक कीट नियंत्रण द्वारा आसानी से रोका जा सकता है। इसके लिए नीम का तेल, नीम उपाक व धतुरे का स्प्रे अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। आँवले के बीजू वृक्ष सामान्यतया 7 से 8 वर्ष से फल देना शुरु करते हैं जबकि कलमी वृक्ष चौथे वर्ष से फल देने लगते हैं। ऐसा पाया गया है कि विभिन्न किस्मों में यदि फलों को समय से न

बोया जाए अथवा किसी कारण से इसकी पत्तियां दिसम्बर से पूर्व गिर जाए तो आने वाले वर्ष में इन वृक्षों की फलत कम हो जाती है और देर से तुड़ाई का सीधा प्रभाव अगले वर्ष की उपज पर पडता है। अतः लगभग सभी किस्मों के फल दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह तक तोड़ना आवश्यक है। यदि यह कार्य दिसम्बर अंत तक समाप्त नहीं किया गया तो इसके अगले वर्ष की उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए अगेती किस्मों को नवम्बर के प्रथम पखवाड़े में, मध्य समय में पकने वाली किस्मों को नवम्बर के द्वितीय पखवाड़े तथा पछेती किस्मों को दिसम्बर के अंत तक अवश्य तोड़ लेना चाहिए। आँवला के फलों को हाथ से तोडते हैं परन्तु यह क्रिया बड़े वृक्षों पर चढ़कर करनी पड़ती है जिससे डालियाँ भी टूट जाती हैं। इसलिए बडे पेड़ों से आँवला तोड़ने के लिए अधिक दूरी वाली शाखाओं से बाँस से बने, कपड़े की थैली युक्त लोहे की कैंचीदार यंत्र से करते हैं। तुड़ाई करते समय फल क्षतिग्रस्त नहीं होने देना चाहिए। जब तक आँवला के पौधे बड़े हो तब तक उनके बीच में छोटी फसलें जैसे गेहूँ, चना, मटर, मिर्ची, बैंगन आदि जैसी फसलें ली जा सकती है। इसी प्रकार इनके बीच कई औषधीय एवं सुगंधीय पौधे जैसे लेमनग्रास, सिट्रोनेला, सफेद मूसली, अश्वगंधा, कालमेघ आदि फसलें भी सफलता पूर्वक उगाई जा सकती हैं।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि आँवला न केवल औषधीय दृष्टि से बल्कि व्यवसायिक खेती की दृष्टि से भी अत्यधिक उपयोगी पौधा है। इसकी व्यवसायिक खेती प्रत्येक दृष्टि से लाभकारी है क्योंकि एक तो इसकी खेती ऊसर भूमि तथा कम ऊपजाऊ जमीनों में सफलता पूर्वक हो सकती है, इसकी खेती के लिए ज्यादा पानी तथा हिफाजत की जरुरत नहीं है। इसके बगीचों के बीच कई अन्य फसलें भी सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है। इनका प्रत्येक भाग औषधीय दृष्टि से उपयोगी है। इसके उत्पादों के लिए व्यापक मार्केट उपलब्ध है तथा अन्य भागों के साथ–साथ यह भूमि की ऊसरता को सुधारता है। इस प्रकार इस बहुपयोगी पौधे की खेती करके किसान अपनी आर्थिक स्थिति में व्यापक सुधार ला सकते हैं।

खुशी बहुत है जहाँ में हमारे घर न सही
मलूल क्यों रहें दुनिया के इंतजाम से हम।
—'अकबर' इलाहाबादी

छत्तीसगढ़ राज्य में वन्य बेल की उपलब्धता फलन एवं प्रसंस्करण

डॉ. संगीता सिंह
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

बेल वनस्पति कुल–रूटेशी का मध्यम आकार का धीरे बढ़ने वाला औषधीय पौधा है। इसको हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी तथा बंगला में बेल, संस्कृत में श्रीफल/बिल्व, पंजाबी में बिल, कन्नड़ में बिलपत्रे, तेलगू में मोरेहू, मलयालम में विलवम् तथा गुजराती में बीली के नाम से जाना जाता है। यह सम्पूर्ण भारत के उष्णकटिबंधीय जंगलों में 1000 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाता है। इसकी लम्बाई 6–7 मीटर तथा परिधि 90–120 से.मी. होती है। यह अधिकतर मंदिरों के पास उगाया जाता है, जहाँ इसके पत्तों को त्रिदलीय होने के कारण भगवान शिव की पूजा के लिए उपयोग में लाया जाता है।

बेल का फल गोलाकार, अण्डाकार, शंक्वाकार, दीर्घायत लम्बाई 7.15 से.मी., व्यास 2–8 इंच (5–28 से.मी.) पतले एवं मोटे छिलके का ग्रे–हरा होता है। बेल के फल का छिलका 4–5 मि0मी0 मोटा होता है। बेल के फलो को तोड़कर गूदे को छिलके से अलग कर लिया जाता है। गूदे का वजन 50–65% ताजे फल का तथा सूखने पर 18–22% मिलता है। इसका गूदा ऑक्सीकृत एन्जाइम्स होने के कारण शीघ्र ही भूरा हो जाता है। गूदे के एक फांक के अंदर 10–15 बीज समतल, लम्बे तथा सफेद रूई की तरह रोम वस्त्र जैसे होते हैं तथा ये एक थैलीनुमा पारदर्शी गम से ढके रहते हैं जो कि सूखने पर ठोस हो जाता है। इसके फल में 2 प्रतिशत पानी में घुलनशील चिपचिपा पदार्थ गोंद मिलता है। ये चिपचिपा पदार्थ बीज के चारों तरफ एक अच्छा जोड़ने वाला पदार्थ होता है। ये चिपचिपा पदार्थ गम अरैबिक से मिलता है। ये पानी के रंग की शक्ति तथा चमक को बढ़ाने में काम आता है।

बेल की उपलब्धता

छत्तीसगढ़ राज्य में वन्य बेल बदौरा बीट तथा रहमानकापा बीट, पंडारिया रेंज, कवर्धा वन विभागीय मोहगाँव बीट, गांधी रेंज, खैरागढ़ वन विभाग में पाया जाता है।

बेल के पौधों में फलन की स्थिति

इसके पेड़ में गरमी के मौसम (अप्रैल–मई) में पत्तियाँ झड़ जाती हैं तथा हरे–सफेद खुशबूदार फूल मई से लेकर जुलाई में आते हैं। इसमें नवीन फल जुलाई के महीने में लगनें लगते हैं (फल पहले लम्बे होते हैं न कि गोल) तथा दिसम्बर के महीने तक पूर्ण आकार को ग्रहण कर लेते हैं। बेल के हरे तथा अधपके फल को छत्तीसगढ़

राज्य में जनवरी से मार्च के माह में तथा पके फल को अप्रैल से जून माह में तोड़ा जाता है। इसके फल पकने में 11 महीने लगते है।

बेल के भेद

गाम्य बेल – गाम्य बेल के फल में काँटे कम होते हैं तथा फल वन्य बेल की अपेक्षा ज्यादा लगते हैं तथा आकार बड़ा होता है ।

वन्य (जंगली) – वन्य बेल का पौधा अपेक्षाकृत ज्यादा कटीला होता है तथा इसमें फल कम लगते हैं तथा फल का आकार छोटा होता है ।

बेल की किस्में

बेल की व्यावसायिक कृषिकरण की दृष्टि से 12 किस्में विभिन्न संस्थानों द्वारा विकसित की गई हैं। इन किस्मों में कागजी इटावा, मिर्जापुरी रामपुरी, दरोगंजी, फैजलाबादी, पंत शिवानी, पंत उर्वशी, नरेन्द्र बेल–5, नरेन्द्र बेल–6 तथा कागजी गोंडा प्रमुख हैं। इनमें कागजी इटावा, रामपुरी का फल का छिलका बहुत पतला तथा अंगूठे के दबाव से टूट जाता है। गूदे का गठन अच्छा, बहुत अच्छी खुशबू का तथा कम बीज वाला होता है। बेल लगाई गई किस्म के अनुसार 4–8 साल की प्राप्ति कर लेने पर बेल के पेड़ में फूल एवं फल आते हैं। प्रायः उन्नतशील किस्मों की कलमी प्रजातियों में 4–5 साल, बीजू पौधों में 7–8 साल की उम्र से पौधे फल देना प्रारम्भ कर देते हैं तथा 10–15 साल की आयु में एक पौधे से प्रतिवर्ष 100–200 फल प्राप्त होते हैं। बेल के पेड़ से 50 साल तक की अवधि तक फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

प्रसंस्करण

छत्तीसगढ़ राज्य में बेल का प्रसंस्करण बेल को चटकाकर बेल फल को सीधे आग में गरम करके, बिहार राज्य में बेल को चटकाकर बालू में गरम करके तथा बेल को चटकाकर ओवन में गरम करके (65–70 डिग्री से.ग्रे.) किया जाता है। ओवन विधि में गोंद बेल के फल से बाहर की ओर बहने लगता है जिसको कि एकत्र कर लिया जाता है।

बेल के पौध के लिए तैयारी

बेल के फलों को पेड़ से तोड़कर बीजों को फलों से अलग करके पौध को नर्सरी में तैयार करना चाहिए। बेल के बीजों को हमेशा पेड़ से एकत्र किये हुए फलों से ही बिजाई के लिए उपयोग में लाना चाहिए न कि जमीन में पड़े फलों से। इसके बीज की वायबिलिटी बहुत कम होती है तथा इसके बीजों में कीड़ों का आक्रमण बहुत ज्यादा होता है। जब इसके पौधे का तना 5–7 से.मी. लम्बा तथा 3–5 पत्ती और 20–25 से.मी. मूसला जड़ आ जाय (लगभग एक साल) तब इसका रोपण करना चाहिये।

बेल के फल का उपयोग

बेल का कच्चा फल ताजा खाया जाता है। इसके पके फल के गूदे को पानी के साथ पतला कर आवश्यकतानुसार चीनी तथा इमली मिलाकर शीतल पेय पदार्थ के रूप में तथा कच्चे फल के गूदे को दवाईयों में उपयोग के लिए लाया जाता है। उत्तरी भारत में इसके फलों को मुरब्बा बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसके अधपके फल को पेट की बीमारी (डायरिया) में उपयोग में लाया जाता है। यह शारीरिक एवं मानसिक बल बढ़ाने वाले औषधि के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इसके गूदे में 920 मिलीग्राम / 100 ग्राम विटामिन 'सी तथा प्रोटीन 5.2 प्रतिशत होता है। इसका गूदा बाजार में सत्व द्रव रूप में बिकता है। इसके ताजे अधपके एवं पके फलों के गूदे का पाउडर रूप में बाजार में बिकता है। कच्चे बेल फल का औसतम भाव छत्तीसगढ़ में 5/– रू. प्रति किलो बाजार में मिलता है।

वनवारि

वारि वन वनवारि,
वनवारि वनवारि।

वारिज विपुलवारि
पुलवारि कुलवारि
द्रुमलता तुलवारि,
कूलकलि कुलवारि;
आकुल मुकुल वारि,
विहग संकुल वारि।

– महाप्राण पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

लालित्य

बेर बेर-बेर लै सराहैं बेर बेर बहु 'रसिक बिहारी' देत बंधु कहँ फेर-फेर।
चाखि-चाखि भाखैं यह वाहू ते महान मीठो, लेहु तौ लषन यौं बखानत हैं हेर-हेर।।
बेर बेर देवै बेर सबरी सु बेर बेर बेर तोउ रघुबीर बेर बेर तिहि टेर टेर।
बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावो बेर लावौ कहै बेर बेर।।

मौसम और मैं

डॉ. रवीन्द्र कुमार
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

मौसम की तरह
जिन्दगी में
दोस्त बदलते रहे
हर माहौल में
हर मोड़ पर
तनहाँ चलते रहे
जिन्दगी की रफ्तार
कभी धीमी
कभी तीव्र हुई
हर हादसा
हर परिवेश में
शीघ्रताशीघ्र हुई
समय की तेज रफ्तार
हमेशा
मुझ पर
हावी हुई
हर सूनापन
इस सूने मन पर
अवश्यंभावी हुई
और मैं
बुद्धि की घाट पर
बैठा
हर कोण से
हर चीज का
विश्लेषण करता रहा
बस यूँ ही
क्षण–क्षण
जीता और मरता रहा

जीवन

डॉ. रवीन्द्र कुमार
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

जीवन
एक मधुवन
जिसमें
फूलों की
खुशबू
और
कॉटों की
चुभन
ऋतुओं का
परिवर्तन
आशायें
हर क्षण
हर दिन
हरे पत्तों की
तलाश
सूखी
टहनियों के
आस–पास
पुष्पों की
आशा
खुशियों की
अभिलाषा
सूखी
टहनियों को
एक नई
जिन्दगी की
प्रत्याशा
परिवर्तन के
माध्यम
कहते हैं इसे
हकीकत/
तुम/
और
हम

मैं हूँ पर्यावरण

सर्वेश सिंघल
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

मैं हूँ पर्यावरण
कुछ नहीं, पर धरती का आवरण,

दुनिया का जीवन दाता
पर बदले में कुछ नहीं चाहता,

बस इतना ध्यान रखो
इसमें गन्दगी न भरो,

मैंने सदियों से, मनुष्यों को पाला
अन्य जीव जन्तुओं, को भी दिया निवाला,

इतना ही नहीं, बहुत कुछ और भी किया
गन्दी हवा को साफ और गर्मी को कम किया,

वर्षा को समय पर लाकर, कृषि को बल दिया
मिट्टी उपजाऊ बनाकर, भोजन की समस्या को हल किया,

धरती को वनाच्छदित कर, पर्यावरण स्वच्छ किया
मौसम चार बनाकर, तोहफा एक और दिया,

इतना सब किया, पर प्रतिफल क्या मिला
जरा गौर से देखो, क्या है ये सिला,

मैं सिसक रहा हूँ देखो अश्रु धारा
सजग हो जाओ, मैं हूँ भविष्य तुम्हारा,

बचाओ पर्यावरण, शुद्ध हवा और नदियों की धारा
मत करो दूषित, मैं ही हूँ भविष्य तुम्हारा,

मत काटो वृक्ष, न दूषित करो हवा
कुछ करने से पहले, सोचो तो जरा,

यदि मैं बिगड़ गया, तो क्या बच पाएगा
पूरा संसार, सर्वस्व नष्ट हो जाएगा,

करबद्ध करों से, करता हूँ गुहार
बचा लो मुझे हो जाएगा उद्धार,

मैं हूँ पर्यावरण
कुछ नहीं, पर धरती का आवरण।

पहाड़ की बेटी

रमाकान्त मिश्र[1] एवं श्रीमती रेखा मिश्र
[1]भा. वा. अ. शि. प., देहरादून

वर्षा थी कि रूकने का नाम नहीं ले रही थी। पिछले 24 घण्टों से अनवरत जारी थी। पहाड़ों पर वर्षा बहुत असुविधायें खड़ी करती है। पहाड़ ध्वस्त होते हैं और उफनती नदियां क्या कुछ नहीं बहा ले जाती। जन जीवन अस्त–व्यस्त हो उठता है।

निरंतर बरसते पानी ने वृंदा की बेचैनी बढ़ा दी थी। वृंदा बहुत व्यग्र थी। खबर आई थी कि चमोली में ऊपर कहीं भूस्खलन हुआ था और मार्ग पूर्णतः अवरूद्ध हो गया था। वह अनंत को ले कर व्यग्र थी। अनंत जिस क्षेत्र में गया हुआ था वहां पर भयंकर भूस्खलन हुआ था और तीन गांव धरा के गर्भ में समा गये थे। उसके पास कोई संपर्क नहीं था। मोबाइल का सम्पर्क पूरी तरह कट चुका था। वृंदा का मस्तिष्क आशंकाओं का गढ़ बना हुआ था। उसके मन से प्रत्येक क्षण यही दुआ निकलती थी–हे भगवान अनंत को कुछ न हुआ हो। जैसे–जैसे समय गुजर रहा था वृंदा की घबराहट और बेचैनी बढ़ती ही जा रही थी। किस देवी–देवता की मन्नत वह नहीं मांग चुकी थी ? लेकिन मन था कि किसी भी प्रकार आश्वस्त न होता था। अंततः वृंदा को लगा कि अगर वह ऐसे ही निष्क्रिय बैठी रही तो उसका सिर फट जायेगा। तो क्या करे ? उसे अनंत की खोज में निकलना होगा।

उसने संस्था के और गांव के लोगों की एक बैठक बुलाई और उनसे अपना निर्णय कहा । उसने उनसे सहायता की याचना की लेकिन दो लोगों को छोड़ कर कोई भी साथ जाने को तैय्यार न हुआ। वृंदा उन्ही के साथ निकल पड़ी।

रह–रह कर होती वर्षा से चलना दूभर हो रहा था। मार्ग पर फिसलन थी अतः गति बहुत कम थी। रात्रि को उन्होने कैम्प लगाया। रात गहराती जा रही थी। वृंदा की आंखों में नींद नही थी। उसे लोगों की कृतघ्नता खल रही थी। कैसे हर व्यक्ति ने इस अभियान पर निकलने से जान छुड़ा ली थी। और मुंहफट गौरा ने तो कह ही दिया था ''तू क्यों इतनी पागल हो रही है। कौन है वो तेरा ?''

क्या कोई किसी का कुछ हो तभी उसकी सहायता की जाये ? तो ये लोग कौन थे अनंत के? क्यों वह सबके लिये रात–दिन जुटा रहता था? चाहता तो आराम की जिंदगी भी काट सकता था वो? कैसे नाशुक्रे लोग हैं? वृंदा की हताशा जाती न थी। कौन है वो तेरा ? इस वाक्य में कितनी जुगुप्सा थी कितना व्यंग्य था एक तरह का लांछन। कौन है वो मेरा ? उसके मस्तिष्क में अनंत से प्रथम भेंट का चित्र उभरा।

''मामाजी बस भी कीजिए'' वृंदा बोली, ''आपको याद नहीं पिछली बार कैसे व्यक्ति से बात चली थी''

''मुझे याद है बेटी वह एक नकारा व्यक्ति था जो सिर्फ तुम्हारी कमाई पर ऐश करना चाहता था।''

''फिर?''

''लेकिन यह ऐसा व्यक्ति नहीं है।'' मामाजी वृंदा को रोकते हुये बोले, ''मैंने पूरी जानकारी कर ली है। अनंत एक पर्यावरणविद है और उसे पहाड़ पर रहने में कोई आपत्ति नहीं है। बल्कि वह तो उत्साहित है।''

''पहाड़ देखा नहीं होगा'' वृंदा व्यंग्य सहित बोली।

''हाँ, ये सच है। किन्तु मेरा विश्वास जानो वह बहुत ही होनहार युवक है।''

''तो फिर विदेश क्यों नहीं गया ?''

''तुम क्यों नहीं गई ?''

''मैं तो पागल हूँ। मुझे तो पहाड़ में शिक्षा का प्रसार करने का जुनून है।''

''वह पागल तो नहीं है लेकिन उसे देश सेवा का जुनून अवश्य है। तुम्हारे बारे में जानकर इतना उत्साहित

हुआ कि मेरे साथ ही आना चाहता था लेकिन व्यस्तता के चलते संभव नहीं था।''

''मामा, एक बात आप अच्छी तरह समझ लेना। मैने विवाह करना ही नहीं है क्योंकि विवाह करके मैं अपने उद्देश्य से न्याय नहीं कर पाऊँगी।'' वृंदा ने अपना निर्णय सुनाया।

''क्या है तुम्हारा उद्देश्य ?''

वृंदा ने हवलदार मेजर रामकृष्ण को घूरा लेकिन वे उसे प्रश्नवाचक दृष्टि से अविचलित देखते रहे।

''तुम जानते हो मामा, मेरा उद्देश्य पहाड़ की लड़कियों में शिक्षा का प्रसार करना है''

''शिक्षा, कि कुंवारी रहो''

''क्या मतलब ?''

''मतलब ये कि आचरण से दी गई शिक्षा मौखिक शिक्षा से कहीं अधिक प्रभावी होती है।''

''अगर कुछ इस शिक्षा को ले पाईं तो पहाड़ों पर शिक्षा की रोशनी जगमागा उठेगी'' वृंदा ने रूक्ष स्वर में कहा।

''बेटी, मैं तेरा सगा मामा नहीं लेकिन तुम तो जानती हो कि मेरी कोई बेटी नहीं। कहने को एक बेटा है जो पहाड़ छोड़ कर ऐसा भागा कि क्या कहूँ। लेकिन इस अवस्था में आकर तुम्हारी मामी की मृत्यु के उपरान्त मैं कितना अकेला हूँ बता नहीं सकता। लेकिन मेरे पास विकल्प हैं। चाहूँ तो पुत्र के पास देहरादून चला जाऊँ। जब अशक्त हो जाऊँगा तो कौन जाने जाना ही पड़ेगा। किंतु अगर तुम विवाह करती तो तुम्हारे बच्चों के सहारे मेरा बुढ़ापा बीत जाता''

''मामा, भावनात्मक ब्लैकमेल मत करो। हो सकता है कि मैं तुम्हारी सगी भांजी नहीं हूँ किंतु तुम मेरे मामा हो। अगर बच्चों में ही तुम्हारा अकेलापन दूर होता है तो स्कूल में बच्चों की क्या कमी है ?''

''तुम अनंत से मिल तो लो।''

''क्या जरूरत है मामा। मुझे मेरे काम में लगे रहने दो''

इसके पश्चात बात आई गई हो गई। लगभग एक सप्ताह के पश्चात वह स्कूल से लौट रही थी जब एक युवक ने उससे पूछा ''हैलो, क्या आप बता सकती है कि चिन्यौली गांव किधर से जाना होगा ?''

''चिन्यौली में आपको किससे मिलना है ?''

''आप वही रहती हैं क्या ?''

''आप बुद्धिमान जान पड़ते हैं। किसी गांव के व्यक्तियों को जानने के लिये वहाँ रहना जरूरी नहीं। ये पहाड़ है, पहाड़ के गांव छोटे-छोटे होते हैं और गांव में सभी एक दूसरे को जानते है।''

युवक ने उसे गौर से देखा

''आप वृंदा जी हैं ?''

वृंदा ने भी उसे गौर से देखा।

''माफ कीजिएगा मैं आपको जानती नहीं। मैंने आपको पहले कभी नहीं देखा।''

''आप ठीक कहती हैं। लेकिन मैं आपको जानता हूँ और आपसे ही मिलने आया हूँ।''

''आपका परिचय ?''

युवक मुस्कुराया, ''मैं न्यूज चैनल 'आज तक' से आया हूँ और आपके शिक्षा के प्रति समर्पण पर एक फीचर के लिये आपका साक्षात्कार लेना चाहता हूँ।''

''आप अवश्य ही मेरा मजाक उड़ा रहे हैं।''

''आप मेरा मजाक उड़ा सकती हैं, मैं आपका नहीं ?''

''ओह, तो आप मि. अनंत हैं''

''मिस्टर की जरूरत नहीं। अनंत काफी है।''

''बेहतर होगा कि आप वापस लौट जायें। गांव यहाँ से तीन कि. मी. की चढ़ाई पर है। अभी आपको ट्रेकर मिल जायेंगे जो वापस आपको चमोली छोड़ देंगे।'' वृंदा ने उपेक्षा से कहा।

''मैंने तो सुना था पहाड़ के लोग अतिथि का स्वागत करते हैं ?''

''जिस प्रयोजन से आप यहाँ आये हैं वह पूरा नहीं हो सकता फिर समय और श्रम व्यर्थ करने से क्या लाभ ?''वृंदा बोली थी।

"आप मेरा प्रयोजन जानती है?"

"मुझे मामाजी ने बताया था।"

"मामा जी ?"

"सेवानिवृत हवलदार मेजर रामकृष्ण जखमोला जी"

"उन्होने क्या बताया था ?"

अब वृंदा अचकचा गई। कैसे कहे कि तुम यहाँ मुझसे शादी करने आये हो।

"वृंदा जी" उसे मौन पाकर अनंत बोला," लग रहा है कि आपको कुछ गलत फहमी है। क्योंकि जिस रूष्टता से आपने मुझसे व्यवहार किया है, वह निश्चय ही किसी पूर्वागृह से है। खैर। लेकिन मैंने आपको बताया है कि मैं एक पर्यावरणविद् हूँ और पहाड़ पर पर्यावरण संरक्षण पर काम करने के लिये यहाँ आया हूँ। मुझे जखमोला चाचाजी ने आपके बारे में बताया था कि आपने लड़कियों की शिक्षा का व्रत लिया है। इससे मुझे आपसे मिलने की उत्सुकता भी हुई और प्रेरणा भी मिली। मेरा मानना है कि पर्यावरण समाज से संबद्ध है। अतः जब तक समाज की सजग भागीदारी नहीं होगी पर्यावरण संरक्षण न हो सकेगा और इस दृष्टिकोण से आप बहुत उपयोगी हो सकती हैं क्योंकि आपके सेवा व्रत से यहाँ के बहुत से लोग आपके प्रशंशक होंगे।"

वृंदा चुप रही।

"आइये चलते हैं। अनंत बोला, मैं यहाँ पर सबसे ऊँचे स्थान पर बने गांव से अपना काम प्रारम्भ करना चाहता हूँ।"

"लगता है आपने स्वदेश फिल्म देखी है।"

"मैं फिल्म नहीं देखता, समय नहीं मिलता। लेकिन फिल्म का जिक्र क्यों ?"

"क्यों कि उस फिल्म में भी नायक अमेरिका से लौटकर भारत के एक गांव का उद्धार करता है।"

"यानि आपने ठान लिया है कि मुझे मजाक बनकर पहाड़ से नीचे फेंक ही देंगी।"

"ऐसा कुछ नहीं" वृंदा शुष्कता से बोली, "पहाड़ पर पहाड़ के लोग तो ठहरने को राजी नहीं आप लोग क्या रूकेंगे ?"

"वृंदा जी, वह पथ क्या पथिक कुशलता क्या जब पथ पर बिखरे शूल न हों/नाविक की धैर्य परीक्षा क्या जब धारायें प्रतिकूल न हों।"

"संवाद फिल्मो में, स्टेज पर अच्छे लगते हैं, तालियां भी मिलती है।" वृंदा रूक्षता से बोली।

"ये निराशा आपके भीतर क्यों है ?"

"क्यों कि मैं पहाड़ को जानती हूँ ?"

"आप कुछ नहीं जानतीं" अनंत कठोर स्वर में बोला, "आप एक अभिमानी लड़की हैं जिसे लगता है कि वह पहाड़ के लिये बहुत बड़ा त्याग कर रही है और इसी के चलते वह निराशा के गहरे कूप में धंसती जाती है।"

वृंदा तिलमिला गई।

"आप जो कर रही हैं, वह अच्छा है। लेकिन न तो किसी चमत्कार की आशा लगायें और न ही निराशा को पनपने दीजिए। अगर आपकी अपेक्षा के अनुरूप विकास न हो रहा हो तो परेशान मत होइए हालात धीरे–धीरे बदलते हैं। इतने धीरे कि कभी–कभी पीढ़ियां गुजर जाती है। हमारा काम है एक दीप जलाना है फिर उससे कई दीप जलेंगे। हो सकता है सुबह देखने को हम रहें न रहें लेकिन सुबह होगी, जरूर होगी। और एक बात और त्याग अगर हमेशा नहीं तो लगभग हमेशा विकृति पैदा करता है। इसलिये कभी भी किसी के लिए त्याग मत कीजिए। मैंने जीवन में एक फिल्म देखी है–गांधी। उस फिल्म में मुझे सबसे ज्यादा हिंसक गांधी नजर आये। उनकी हिंसा स्वयं से थी। अपने निकट वालों से थी। कैसे अपनी पत्नी को प्रताड़ित करते हैं – पाखाना साफ करने के लिए। कैसे उससे पति–पत्नी का नैसर्गिक सम्बन्ध त्याग देते हैं? कैसे बात–बात पर भूख हड़ताल करते हैं? ये क्या है? स्वंय पर की जाने वाली हिंसा भी उतनी ही निंदनीय है। उपर से यह विकृति भी पनपाती है।" अनंत सांस लेने को रूका।

"मेरी मानो, सामान्य बनों" अनंत का आक्रोश थमा, " माफ करना हिंसक हो गया था।"

कुछ क्षण मौन रहा फिर वृंदा बोली " मैं क्षमा चाहती हूँ। मैंने आपसे बहुत बदतमीजी की। आप ठीक कहते हैं मेरे मन में आपके प्रति पूर्वाग्रह था। कभी बताऊंगी। अभी

नहीं बता सकती। किंतु आपकी निश्च्छल बातों ने मेरा मन साफ कर दिया है।"

"मन साफ हो गया फिर भी नहीं बतायेंगी ?"

"बताते लज्जा आती है।"

"तब मैं कुछ नहीं कहूंगा। क्योंकि लज्जा नारी का आभूषण है।"

दोनों हंस पड़े थे।

विलक्षण है अनंत। वह उसके साथ गांव गया और इसके उपरान्त वहां ऐसा रमा कि जैसे सदैव वहीं रहता रहा हो। समय का चक्र अत्यंत क्षिप्रता से घूमने लगा। लोगों से मिलना और उनकी बातों को सुनना अनंत का प्रिय काम था। उसे लोगों के नाम तत्काल स्मरण हो जाते। शीघ्र ही वह आस–पास के गांवों मैं घुल मिल गया। जिस तेजी से वह क्षेत्रीय बोली को सीखा रहा था वह वृंदा के लिये आश्चर्यजनक था। उसने एक सामुदायिक भूमि का चयन किया और एक ओर वृक्षारोपण प्रारम्भ किया दूसरी ओर जलाशय का निर्माण कराया। अनेक छोटे–छोटे स्रोतों का पानी इस जलाशय तक लाना दुष्कर कार्य था। किंतु कहीं नालियां बना कर, कहीं पाइप लगाकर तथा कहीं प्रपात बना कर उसने मुख्य जलाशय तक अनवरत पानी के प्रवाह का प्रबंध कर दिया। इस कार्य में उसके सम्पर्क बहुत काम आये। इसमें उसने स्थानीय लोगों का योगदान, श्रमदान तथा ज्ञान का भरपूर उपयोग किया। मुख्य जलाशय के प्रवाह के रखरखाव हेतु उसने संबद्ध पांच गांवों के लोगों की एक समितिं का गठन भी कर दिया और इस जलाशय से पांचों गांवों तक जल के पहुँचाने का प्रबंध भी कर दिया। जब तक यह कार्य नहीं हुआ था इसकी कोई संभावना ही नजर न आती थी। जब काम प्रारम्भ हुआ तब लोगों ने इसकी खिल्ली उड़ाई। किन्तु जब यह सम्पन्न हुआ तो लगा कि यह तो इतना सरल था कि हम लोग चाहते तो कभी भी कर सकते थे। लेकिन इस कार्य ने जिसमें मात्र तीन माह का समय लगा था पांचों गांवों की पानी की समस्या दूर कर दी। इस कार्य से इन गांवों की महिलाओं के समय और श्रम में जो बचत हुई उससे उत्साहित हो कर पांचों गांवो की महिलाओं ने अनंत के न–न करने पर भी उसका सार्वजनिक अभिनन्दन किया और प्रतीक रूप में उसे राखी बांधी। अनंत भी इस पर भावुक हुए बिना न रह सका।

महिलाओं ने जलाशय, प्रवाह और वाटिका की रक्षा करने का संकल्प लिया। अब तक अनंत उनकी बोली पूर्ण रूपेण सीख चुका था और धारा प्रवाह बोलता था। इस कारण वह अत्यंत सहजता से घुल मिल जाता था। उसने अपने संबोधन में कहा कि वह इस प्रकार के कार्यों को करने वाले लोगों को आमंत्रित करेगा तथा सबसे मिलवायेगा। उसने चेतावनी दी कि वर्षाऋतु में प्रवाह में बाधा आयेगी मिट्टी, गाद आदि प्रवाह को रोकेंगे। अतः नियमित देखभाल आवश्यक है। उसने वह कहानी भी सुनाई जिसमें एक जलाशय को दूध से भरना था लेकिन सभी ने यह सोचकर कि अगर मैं एक लोटा पानी डाल दूँ तो क्या पता चलेगा, पानी डाला। नतीजा यह हुआ कि सुबह जलाशय पानी से भरा था। तो कृपया ऐसा न करें। इस पर सभी खूब हंसे।

वृंदा को पता चला कि अनंत का अपनी एक संस्था (NGO) थी जिसके द्वारा वह अन्य संस्थाओं के सम्पर्क में रहता था और अपने कार्यों का आयोजन करता था। उसे राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से परियोजना आधारित वित्तीय सहायता प्राप्त थी। संप्रति वह गढ़वाल के दूरस्थ ग्रामों की जल समस्या पर विश्व बैंक की परियोजना का संचालन कर रहा था। वह स्थानीय युवकों के साथ दूरस्थ ग्रामों की यात्रा पर चला जाता था और कई सप्ताहों में लौटता था। उसने गढ़वाल में इस क्षेत्र में कार्यरत सभी लोगों से मुलाकातें की और इसी प्रकार छोटे–छोटे स्तर पर अनेक परियोजनायें पूरी की।

वृंदा को अनुभव हुआ कि अनंत का परिप्रेक्ष्य कितना बड़ा था। जब अनंत ने ग्रामीण शिक्षा पर परियोजना का सूत्रपात किया और वृंदा को उसका कार्यकारी अधिकारी बनाया तब उसने अनंत की योजनाओं और उसकी मेहनत को जाना। उसने देखा कि तड़के उठने वाला अनंत देर रात तक अपने लैपटॉप पर काम करता रहता था। उसने उसकी बैटरियों को चार्ज करने की व्यवस्था भी बना रखी थी। रोज ट्रैकर चालक चमोली से उसकी चार्ज हुई बैटरी लाते थे और डिस्चार्ज बैटरी ले जाते थे। अनंत की

परियोजना संचालित करने से वृंदा की व्यस्तता अत्याधिक बढ़ गई। पढ़ाने के लिये तो वृंदा को अवकाश ही नहीं बचा था। लड़कियों, महिलाओं से सम्पर्क करना, शिक्षिकाओं को प्रशिक्षण देना तथा उनके प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षक तैयार करना, एक स्थान से दूसरे स्थान की अनवरत यात्रायें, बहुत सारा पत्र व्यवहार, काम ही काम था। कितनी सहजता से उसका फलक बदल गया था।

समय गुजर रहा था। वृंदा को लगता था कि समय बहुत कम है। जबकि अनंत सदैव शान्त और धीर बना रहता था। यद्यपि जबसे शिक्षा की परियोजना प्रारम्भ हुई थी वृंदा का बहुत सा समय अनंत के साथ व्यतीत होता था। लेकिन वृंदा ने कभी अनंत को सोते नहीं देखा था। वह जब उसे छोड़ कर जाती तो वह काम कर रहा होता और वह जब आती तो वह योग/व्यायाम या काम कर रहा होता। कभी–कभी वह सोचती–ये सोता कब था? सोता भी था या नहीं ?

''दीदी थोड़ा आराम कर लो'' पास ही लेटे विशालमणि ने कहा तो वृंदा अतीत से बाहर आई।

''हाँ।'' वृंदा सोने का प्रयास करने लगी।

प्रातः वर्षा थम चुकी थी। ये एक अच्छी खबर थी। वे लोग नित्य क्रिया से निबट, चाय–नाश्ता करके चल पड़े। विशाल इन पहाड़ी मार्गों का अच्छा जानकार था। यद्यपि उसकी आयु कम थी किंतु वह इस क्षेत्र के चप्पे–चप्पे से परिचित था। वृंदा को इन दोनों युवकों की गति से चलना दूभर हो रहा था। यद्यपि वे अपेक्षाकृत धीमें चल रहे थे पर प्रायः वृंदा उनसे पर्याप्त पीछे रह जाती थी। दोपहर को भोजन करके तीनों ने थोड़ा विश्राम किया और फिर तेजी से चल पड़े। संध्या के समय वे लोग उस क्षेत्र में पहुँच सकें। वहाँ पहुँचने वाले वे प्रथम लोग थे। चारों ओर भयंकर तबाही थी। कहीं भी गांव का नामोनिशान नहीं था। वृंदा हताश हो भूमि पर बैठ गई। क्या सब समाप्त हो गये। वृंदा की आत्मा चीत्कार कर उठी। काफी देर तक बैठे रहने के उपरान्त वृंदा ने थोडा पानी पिया। ''ढूँढना होगा।'' वह बुदबुदाई। उन्होंने ढूँढना शुरू किया। धीरे–धीरे रात गहरा गई और कुछ भी करना मुमकिन न रह गया। खिन्न मन से सभी ने खाना खाया और सोने का प्रयास करने लगे।

अगले दिन सभी लोग अत्यंत निराश थे। तय किया गया कि एक बार फिर नये सिरे से खोज बीन की जाये। पाँच घण्टे की अनवरत खोज बीन का परिणाम निकला मूल स्थल के करीब आधे मील की दूरी पर अनंत पत्थरों से दबा मिला। पहले तो लगा कि वह मर चुका है किंतु निकालने पर ज्ञात हुआ कि अचेत है। तत्काल उसके गीले कपड़े निकाल कर बदन सुखाकर गर्म कपड़े पहनाये। उसको डॉ. द्वारा निर्देशित इंजेक्शन लगाये। इसके उपरान्त वे लोग लौट पड़े। वृंदा के लाख कहने पर भी विशाल मणि और बद्री प्रसाद स्ट्रेचर स्वयं ही लादे रहे।

पहाड़ पर चढ़ाई की अपेक्षा उतरना कम श्रमसाध्य रहता है बस सजगता अधिक चाहिए। विशाल और बद्री दोनों ही पहाड़ के बेटे थे। उनकी रतार से वृंदा को उतरना कठिन था। इस प्रकार जब तक वृंदा उन तक पहुँचती वे विश्राम कर लेते थे। उसी दिन एक प्रहर रात गये वे अपने गांव पहुँच गये। वहाँ पर तत्काल एक जीप में लादकर चमोली के लिये चल पड़े। चमोली से बचाव दल हैलीकाप्टर द्वारा देहरादून पहुँचाया गया। जहाँ पर अनंत के माता पिता एक चार्टर्ड प्लेन के साथ मौजूद थे। अनंत अभी भी बेहोश था।

''मैं साथ चलना चाहती हूँ।'' वृंदा ने कहा। अनंत के पिता असमंजस में पड़ गये।

''बेटा तुम चिंता मत करो हम इसकी पूरी देखभाल करेंगे।'' वे बोले। वृंदा कुछ न कह पाई। वह सूनी नजरों से अनंत को जहाज में चढ़ाते और फिर जहाज को दिल्ली की उड़ान भरते देखते रही।

लड़खड़ाते कदमों से वह बाहर की ओर चल दी। तभी हैलीकाप्टर के पायलट ने कहा ''मैडम हम वापस चमोली जा रहे हैं। आप चाहें तो हम आपको वहाँ छोड़ देते हैं।'' वृंदा ने एक क्षण सोचा फिर हैलीकाप्टर की ओर मुड़ गई। समय गुजरता गया। उसे यह सूचना तो मिली कि अनंत ठीक हो गया है किंतु अनंत ने कभी उससे संपर्क नहीं किया। वृंदा अपने कामों में मन न लगा पाई। एक अजीब सी कचोट उसके मन में बनी रही। धीरे–धीरे उसके मन में गहन निराशा जड़ जमाने लगी।

इसी बीच मध्य प्रदेश में एक परियोजना में पद निकला तो उसने भी आवेदन किया। उसके अनुभव के

आधार पर उसे चयनित कर लिया गया। नये परिवेश व नये काम में धीरे–धीरे वृंदा को रूचि होने लगी और वह मनोयोग से काम में जुट गई। दो वर्ष में वहाँ की परियोजना पूरी हुई तो उस संस्था के निदेशक ने अपनी दूसरी परियोजना में उसे उड़ीसा भेज दिया। यह परियोजना निर्धन अपंग लोगों के पुनर्वास पर थी। इसमें कुछ लोग तो जीवट वाले मिलते पर अधिकांश तो हारे हुए लोग थे। उनकी मनःस्थिति को सुधारना और जीवन के प्रति आशा को जागृत करना एक दुष्कर कार्य था। वृंदा ने मनोचिकित्सक को परियोजना में जोड़ने का प्रस्ताव किया जो स्वीकृत भी हो गया। किंतु मनोचिकित्सक आशुतोष चटर्जी कुछ सनकी किस्म का इंसान था। उसको इतने कम वेतन पर काम करना अपना अपमान लगता था। लेकिन बेरोजगारी के चलते मजबूर था। वह काम में कुछ भी रूचि न लेता, बस दवायें लिखता था। वृंदा को उसका रवैया ठीक नही लगा तो उससे लिखित शिकायत भेज दी। फलस्वरूप चटर्जी को जाना पड़ा और निदेशक ने उससे कहा कि वह स्वयं उपयुक्त व्यक्ति को भर्ती कर ले।

वृंदा किसी समर्पित व्यक्ति के लिये पत्र व्यवहार करने लगी। इसी के दौरान उसे पता चला कि भुवनेश्वर में अपंगों की सहायता के लिये एक सेमिनार हो रहा है तो उसने उसमें भागीदारी के लिये सम्पर्क किया। उसे एक पर्चा पढ़ने का समय दिया गया। वृंदा ने वहाँ जाकर अपनी प्रस्तुति दी। जिसकी भूरि–भूरि सराहना हुई। बहुत से लोग एकत्रित हो रखे थे और उनमें से कुछ अत्यंत समर्पित कार्यकर्ता भी थे। वृंदा इन सबसे मिलने जुलने में व्यस्त हो गई। अगले दिन लंच के बाद उसे जाने कैसे लाबी में ही कुर्सी पर नींद आ गई। जब नीद खुली तो सत्र आरम्भ हो चुका था। वह किसी प्रकार जा कर किनारे खड़ी हो गई। आँखें अभ्यस्त हो जायें तो वह किसी खाली सीट पर बैठे और तब उसे अनुभव हुआ कि वह गलत ओर आ गई थी। यह तो अपंगों के लिये स्थान था जिसमें व्हील चेयर सहित लोग आ जा सकते थे। वह दूसरी ओर जाने का मार्ग तलाशने लगी कि चौंक पड़ी। सबसे अगली कतार में अनंत बैठा था–एक व्हील चेयर पर। वृंदा को जैसे सांप सूंघ गया। उसने बड़ी मुश्किल से खुद पर काबू किया। बहुत सोच विचार के पश्चात उसने निर्णय किया कि उसे अनंत से मिलना चाहिए।

वक्ता का भाषण समाप्त हुआ तो प्रश्नकाल के दौरान ही अनंत को अगले वक्ता के रूप में आमंत्रित कर लिया गया। प्रश्नकाल लंबा नहीं चला सो अनंत ने बोलना प्रारम्भ किया। उसके पहले ही वाक्य पर वृंदा के रोंगटे खड़े हो गये।

''दोस्तों'' अनंत कह रहा था ''आज मैं आपके सम्मुख जीवित हूँ तो अपनी एक मित्र के अदम्य साहस और दुर्घर्ष जिजीविषा के कारण। मैं उत्तराखण्ड के चमोली में एक भूस्खलन में पत्थरों के नीचे दब कर अचेत हो गया था और कोमा में चला गया था। धीरे–धीरे मौत की गोद में सरक रहा था कि वह जीवन का संदेश लेकर आ गई। बिना किसी प्रशिक्षित व्यक्ति के, गांव के दो किशोरों के साथ पहाड़ के खतरनाक रास्तों से वर्षा में भीगते हुए...।'' लोग मंत्रमुग्ध हो कर सुन रहे थे। अनंत का भाषण अद्‌भुत था। उस ने तीन बजे बोलना प्रारम्भ किया था और साढ़े सात बजे तक अनवरत बोलता रहा और लोग सुनते रहे। वृंदा भी श्रोताओं में थी।

अनंत का भाषण सुनने के उपरान्त वृंदा को लगा कि उसका अनंत से मिलना ठीक न होगा। शायद अपनी ऐसी दशा में वह उससे न मिलना चाहता हो, वरना जब वह उसका इतना कृतज्ञ था तो अब तक संपर्क क्यों न किया ?

वृंदा ने अपना सामान बांधा। सामान था भी क्या–मात्र एक बैग। उसने हॉस्टल के केयर टेकर को सूचना दे दी कि वह कल नहीं रूकेगी। एक रिक्शा कर के रेलवे स्टेशन पहुंची। पता चला सतना जाने वाली ट्रेन तीन घण्टे लेट थी और ग्यारह के आस पास आने की संभावना है। यद्यपि वृंदा के पास साधारण दर्जे का टिकट था किंतु स्टेशन पर महिलाओं और उच्च श्रेणी के लिए एक ही प्रतीक्षालय था अतः वह प्रतीक्षालय की ओर बढ़ गई।

प्रतीक्षालय में प्रविष्ट होते ही वृंदा को चौंक जाना पड़ा। वहाँ पर अनंत अपनी व्हील चेयर पर बैठा लैपटॉप पर कुछ कर रहा था। द्वार खुलने की आहट से उसने सिर उठाया तो स्तब्ध रह गया। अब वृंदा के पास कोई विकल्प नहीं था। वह धीरे–धीरे आगे बढ़ी।

'हैलो'–वह धीमी आवाज में बोली।

अनंत उसे एक टक देखता रहा। फिर उसकी बड़ी–बड़ी आंखों से आंसू बहने लगे। फिर कितनी ट्रेनें आईं और गईं वे दोनों एक दूसरे का हाथ थामे बातें ही करते रहे। अनंत के साथ आये उसके सहायक राजप्रकाश की हिम्मत ही न हुई कि वह उन दोनों के मध्य हस्तक्षेप करता।

काफी देर से दोनों को मौन पा कर वह निकट जा कर बोला, ''सर, सवेरा हो गया है चाय ले आऊँ ?''

''हाँ सवेरा हो गया है।'' अनंत गहन वाणी में बोला। चाय पी कर, नित्य क्रिया से निवृत हो कर तीनों ने नाश्ता किया। फिर अनंत राजप्रकाश से बोला ''राज, तुम आठ बजे वाली गाड़ी से निकल जाओ ?''

''सर, आपको छोड़ कर ?'' राजप्रकाश हैरत से बोला। अनंत मुस्कुराया। उसने अनुराग पूर्ण नेत्रों से वृंदा को देखा और फिर बोला ''तुम निश्चिन्त रहो। अब मैं ऐसे संरक्षण में हूँ जिससे छीनने का साहस तो स्वयं यमराज भी नहीं कर सकेंगे।''

एक क्षण को तो राजप्रकाश कुछ समझ न पाया। फिर उसने विस्फारित नेत्रों से वृंदा को देखा।

''आप वृंदा जी हैं ?'' राजप्रकाश आश्चर्य से बोला फिर उसने आगे बढ़ कर वृंदा के पैर छू लिये। वृंदा अचकचा गई।

''मेरा तो आपके दर्शन पा कर जीवन ही धन्य हो गया।'' राजप्रकाश सम्मान सहित बोला।

वृंदा और सकुचा गई।

ख्वाब के गाँव में पले हैं हम
पानी छलनी में ले चले हैं हम

छाछ फूँके कि अपने बचपन में
दूध से किस तरह जले हैं हम

तू तो मत कह हमें बुरा दुनिया
तूने ढ़ाला है और ढ़ले हैं हम

–जावेद अख्तर

वृक्ष वंदना

एस. एल. मीणा
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

वसुन्धरा तेरे आँचल में हम वृक्ष लगाते हैं,
श्रद्धा पूरित होकर वृक्षों पे फूल चढ़ाते हैं।

तुम लहलहाओ इस तरह से कि प्रदूषण मिट जाये,
संकल्प लो ऐसा की धरा पर हरियाली छा जाये।
वृक्षारोपण हम करेंगे शपथ यह खाते हैं।

वसुन्धरा तेरे आँचल में हम वृक्ष लगाते हैं,
श्रद्धा पूरित होकर वृक्षों पे फूल चढ़ाते हैं।

स्वार्थी हैं हम फिर भी न तूने दुतकारा,
जनहित के रखवाले उपकार है ये तेरा,
सारा जहाँ है, तेरे कारण तू सबका रखवाला।

वसुन्धरा तेरे आँचल में हम वृक्ष लगाते हैं,
श्रद्धा पूरित होकर वृक्षों पे फूल चढ़ाते हैं।

वह शक्ति हमें दो दाता हम हरित क्रान्ति लायें,
जीवन भर धरा पर वृक्ष लहराते जायें,
तरूवर विनती हैं, तुझसे साथ हमारा देना।

वसुन्धरा तेरे आँचल में हम वृक्ष लगाते हैं,
श्रद्धा पूरित होकर वृक्षों पे फूल चढ़ाते हैं।

वैदिका से हम तेरे चरणों में शीश झुकाते हैं,
तेरा दिया ही यह वैभव जिसके हम रखवाले,
कुछ त्याग नहीं हमारा बस कर्ज तेरा चुकाते हैं।

वसुन्धरा तेरे आँचल में हम वृक्ष लगाते हैं,
श्रद्धा पूरित होकर वृक्षों पे फूल चढ़ाते हैं।

हम चूक गये हम चूके क्यों

विनीता श्रीवास्तव
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

हम चूके सन् 71 में, जब बाजी हाथ हमारे थी,
अपनी शर्तों पर समझौता, करने की अपनी बारी थी ।

जब संसद बना निशाना तो, आखिर हम तब भी चूक गये,
यह कर देंगे, वह कर देंगे कि टॉय–टॉय पर फिस्स हुए।

समझौते और वार्ताएँ, हम बार–बार ही करते हैं,
पर वही ढ़ाक के तीन पात ही हाथ हमारे लगते हैं।

जब एक पड़ौसी दूजे पर, शक करता उससे डरता है,
जो पैदा होती वहीं तभी, फासीवाद कट्टरता है।

ये लोकतंत्र की हत्यारी हिंसा, ये सब दंगे फसाद,
उनको यदि रोका न गया, बढ़ता जाएगा उग्रवाद।

एकता हमारी बनी रहे, दुश्मन से तब लड़ पायेंगे,
वरना हम और विभाजित होकर खण्ड–खण्ड हो जाऐंगे।

हिमवन्त देश

श्रीमती विजय धस्माना
भा. वा. अ. शि. प., देहरादून

कौन भाग्यशाली होगा हिमवन्त देश,
बद्री का आसन जहाँ कैलाश के नीस।

नील कंठ महादेव को बूढ़ो केदार,
कितने सुहाने लगते हरे–भरे पहाड़ ।

ऊखीमठ, जोशीमठ देवतों की थाती,
स्वर्ग के समान लगती फूलों की घाटी ।

अलकनंदा भागीरथी खिल–खिला के बहती,
पूर्वी पश्चिमी नयार कल कल ध्वनि कर बहती ।

चन्द्रबदनी, कुंजापुरी, सुरखण्छा की धार,
चीढ़, देवदार, बाँझ, बुराँस की बयार ।

धन्य धन्य तुमको मांजी मुझे यहाँ जन्म दिया,
इस भूमि में जन्म लेकर पुण्य कमाया ।

कुछ भी नहीं चाहिये मुझको मेरी यही है विनती,
जन्म–जन्म तक जन्म लूँ मैं यही है पुण्य धरती ।

प्रकृति की सीख

छत्रपाल सिंह सैनी
भा. वा. अ. शि. प., देहरादून

शांत खड़े द्रुम वन के, शान्ति का राग सुनाते
लहू पिपासू मानव को अहसास कराते,
मौन रहकर अहिंसा के पथ पर चलने का।

आकाश में उड़ते पंछी रगों में साहस भरते,
सफलता के सोपानों को छूने के लिए।

शीतल सरिता की कलकल,
झरनों का बहना अविरल,
करता उपचार भीषण ग्रीष्म से व्याकुल पथिक का।

तनाव से बोझिल मन को देती विश्राम,
शीतल बयार वनों की।

भौरों की गुंजन गाती वानिकी के गीत,
वसुंधरा पाठ पढ़ती धैर्य और सहिष्णुता का।

बेवकूफ दिमाग क्यों चाटता है

रमाकान्त मिश्र
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

सुरेश चंद्र तिवारी राज नारायण शुक्ल के साले थे। वे बेहद व्यस्त आदमी थे। कचहरी में बड़े बाबू थे लिहाजा कचहरी के चपरासी उनके घरेलू नौकर थे। राज नारायण शुक्ल एक पहुँचे हुए फकीर थे। वे यूँ तो एक शोध संस्थान में शोध सहायक थे किंतु शोध में कुछ अधिक सहायक नहीं होते थे। अलबत्ता जासूसी उपन्यासों के शौकीन थे और रात दिन एक न एक जासूसी उपन्यास पकड़े रहते थे। इस समय राज नारायण शुक्ल अपने भार्या बंधु स्वनाम धन्य सुरेश चंद्र तिवारी की बैठक में बैठे थे। दोनों में पिछले डेढ़ घण्टे से वार्तालाप चल रहा था। अब जाहिर है कि अगर डेढ़ घण्टे से बार्तालाप हो तो वह निरर्थक ही होगा। दोनों व्यक्तियों को गर्मी लग रही थी। लेकिन वार्तालाप में व्यस्त होने के कारण बेचारे पंखा चलाने का समय नहीं पा रहे थे।

''उफ कितनी गर्मी है'' सुरेश चंद्र तिवारी ने कहा और अपनी कमीज के बटन खोल डाले।

''सड़ी गर्मी है'' कफ के बटन खोल कर आस्तीन ऊपर करते हुए राज नारायण शुक्ल ने अपनी राय दी।

''इस बार जैसी गर्मी तो पिछले सौ साल में नहीं पड़ी'' सुरेश बोले

''भाई साहब बिहार में ही डेढ़ सौ आदमी मर चुके हैं'' राज नारायण ने न्यूज ब्रेक की।

''सरकार भी तो कुछ नहीं करती। सुरेश का निर्णय था।

''सरकार को घोटालों से फुर्सत हो तब न ?''

राज नारायण जी ने जानकारी बाँटी।

''अरे पैसा पीट रहे हैं, पैसा।'' सुरेश चंद्र ने जानकारी बांटी।

''और नहीं तो क्या? तुम्ही बताओ जितनी पांच साल में तनख्वाह नहीं मिलती उतना ये लोग इलेक्शन में खर्च कर देते हैं ?'' राज नारायण कहा

''देख लो, देश को खोखला किये दे रहे हैं।'' सुरेश ने चिंता व्यक्त की''

''लेकिन अदालत अब इनके पीछे पड़ गई है।''

''अरे कुछ नहीं होने वाला। सुना नहीं राजस्थान में जजों ने तीन–तीन, चार–चार मकान आवंटित करवा रखे हैं।''

''अरे तो भइया बहती गंगा में कौन हाथ नहीं धोता?''

''लेकिन मजे तो अखिल भारतीय सेवाओं वालो के हैं।''

''भइया, ये तो आधुनिक नवाब हैं। जरा ठाट तो देखो इनके।''

''ठाट, सात पुश्तो के खर्चे न खत्म हो इतना पैसा बना रहे हैं।''

''तभी तो गरीब आदमी मर रहा है।'' सुरेश जी ने चिंता व्यक्त की

''अरे गर्मी भी तो कितनी है।'' राज नारायण ने पसीना पोंछते हुये कहा।

''ये कमबख्त राम आसरे जाने कहां मर गया। मैने इसे पिछले दो दिन से नहीं देखा।'' सुरेश ने अपने नौकर को याद किया।

''और वो दूसरा ? क्या नाम था–हाँ, अशर्फी लाल''

''यार, उसे तुम्हारी सलहज अपने काम के लिए रखती है। हम उससे काम नहीं ले सकते। ''सुरेश चन्द्र ने बताया।

"यार उनकी सेवा में तुम हमे रखवा दो। कुछ काम तो हम बड़ी कामयाबी से करते हैं। विश्वास न हो तो अपनी बहिन से पूछ लो।" राज नारायण ने पसीना पोंछते हुये मजाक किया।

"वो दिन गये जब खलील खाँ फाख्ता उड़ाया करते थे। ऊफ आज तो ये गर्मी जान ले के रहेगी।" सुरेश चंद्र ने कहा।

"अरे, राम आसरे।" तभी सुरेश को राम आसरे नजर आया तो उन्होने हांक लगा दी।

"आया बाबू जी।" राम आसरे ने भी हांक लगाई और गायब हो गया।

ये लोग पसीना पोछते और वार्तालाप करते रहे। करीब आधे घण्टे बाद राम आसरे अंदर प्रविष्ट हुआ। राम आसरे ने एक काले रंग की कमीज पहन रखी थी। वैसे ये आज का ताजा रंग है किसी जमाने में कमीज सफेद और पतलून भूरे रंग की होती थी। लेकिन ये इतिहास की बात है और इसका यहाँ कोई मतलब नहीं है।

"अरे उल्लू, दिन भर कहाँ रहता है?" सुरेश चंद्र ने पूछा।

"घोंसले में, सरकार।"

"गधा।" सुरेश चंद्र ने झल्लाकर कहा।

"धोबी के पास, हजूर"

"अबे बेवकूफ, क्यों दिमाग चाटता है?" सुरेश चंद्र ने दांत पीसते हुये कहा।

"ये तो मुझे भी नहीं मालूम जनाब" राम आसरे ने सिर खुजाते हुये कहा। यहां यह बता देना समीचीन होगा कि राम आसरे को भगवान कृष्ण ने वरदान दिया था कि वह समस्त कार्य खुजाते हुये सम्पन्न करेगा। इसलिये वह हर समय कुछ न कुछ खुजाते ही रहता है। कमर के नीचे के कुछ विशेष अंग तो वह अत्यंत चपलता और दर्शनीय ढ़ंग से खुजाता है।

राज नारायण ने किसी प्रकार अपनी हँसी रोकते हुये कहा, "राम आसरे तुम पंखा खोल दो और देखो कि अंदर कुछ ठंड़ा हो तो।"

"पहले पंखा खोलू या अंदर ठंडा देखू?'

"पहले पंखा खोलो।"

"अभी लीजिये।" कहकर राम आसरे कमरे से बाहर जाने लगा तो राज नारायण ने कहा, "अबे, पंखा तो खोलता जा।"

"बाबू जी देखिये हमें बीच में टोकना पसंद नहीं है। जब आपने हमसे कह दिया तो अब उस कार्य को करना हमारी जिम्मेदारी हो गई।"

"अबे, लेकिन तू तो बाहर जा रहा था, पंखा क्या रिमोट से खुलेगा ?'

"रिमोट से नहीं बाबू जी, पंखा तो रिंच से खुलेगा।"

"अबे मैं पंखा चलाने को कह रहा हूँ खोलकर जमीन पर उतारने को नहीं।"

"तो क्या सही–सही नहीं बोल सकते थे ?" राम आसरे ने खिन्न स्वर में कहा, "समय की तो कोई कीमत ही नहीं समझता। इतनी देर से जाने क्या–क्या कहे जा रहे हैं। एक सीधी सी बात नहीं कह सकते कि राम आसरे पंखा चला दो।"

"राम आसरे पंखा चला दो।"

"अब कहने का क्या फायदा? अब तो हम चला ही देंगे।" राम आसरे बोला," लेकिन आप पढ़े लिखे लोग हैं भाषा का सही इस्तेमाल क्यों नहीं करते।

"अबे तू पंखा चलायेगा या नहीं ?"

"चलाऊँगा, चलाऊँगा क्यों नहीं ? मैं यहाँ आता किस लिए हूँ ?

"भइये तू चाहे जिस कारण आता हो लेकिन पंखा चला दे। हम गर्मी से मरे जा रहे हैं।"

"तबीयत ज्यादा खराब हो रही हो तो मैं डाक्टर को बुलाकर लाऊँ।"

"मेरे बाप, तू जा।"

"आप ऐसी बात कह कर हमें लज्जित न कीजिए," राम आसरे ने कहा । राज नारायण ने उसे घूरा। लेकिन उस पर कोई प्रभाव न पड़ा।

"आप... आप ये कह कर हमें ही नहीं वरन अपनी पूज्य माताजी को भी गाली दे रहे हैं।" राम आसरे ने बात पूरी की।

"राम आसरे।" राज नारायण चीख पड़े

"जी जनाब।" उतनी ही तेज आवाज में राम आसरे ने तत्परता से उत्तर दिया।

"राम आसरे, आप कृपा करके पंखा चला दीजिये" सुरेश चंद्र ने दांत पीसते हुये व्यंग्यात्मक स्वर में कहा।

"बाबू जी आप ऐसा क्यों कहते हैं। आपको ऐसा कहना शोभा नहीं देता। मैं एक क्लास फोर्थ हूँ। आप मुझे आदेश दीजिये।"

"तू जा।"

"ठीक है, लेकिन पंखा चला दूँ या नहीं।"

" जो तेरी मर्जी वो कर।"

"मेरी क्या मर्जी बाबूजी, मर्जी तो आपकी चलेगी।"

"हाँ, मर्जी तो मेरी चलेगी। तुम पंखा चला ही दो।"

"ठीक है, मैं पंखा चला देता हूँ। इसमें कौन सी बात है। मैं तो कब से पंखा चला देता। आप ही लोग मुझे बातो में लगाये हुये हैं। मुझे तो वैसे ही फुर्सत नहीं हैं।" राम आसरे बोला।

राम नारायण और सुरेश चंद्र ने मौन ही रहना उचित समझा। अंततः बड़बड़ाता हुआ राम आसरे पंखे के स्विच की ओर बढ़ा और उसे ऑन करके बोला, "इसकी गति बढ़ा दूँ या इतनी ही रहने दूँ।"

"इतनी ही रहने दो।"

"तो ठीक है, मुझे कौन सी परेशानी है। मैं तो पहले ही कह रहा था कि स्पीड ठीक ही है। बाकी मालिक लोगों से पूछ लेना अच्छा होता हैं।" कहता हुआ राम आसरे बाहर निकल गया। लेकिन उल्टे पैर लौट आया। उसके बाहर जाने से ब्लड प्रेशर जितना कम हुआ था उसके लौट आने पर उतना ही बढ़ गया।

"मैं कहता हूं कि आप लोग मुझे कोई काम करने देंगे या नहीं ?" राम आसरे बोला।

"क्या मतलब ?"

"मतबल ये कि बात में बात निकालते जाते हैं आप लोग। अब हम आप लोग जितना पढ़े लिखे तो हैं नहीं। बाकी आठ जमात पास हैं, ये ठीक है। लेकिन आप लोग तो बात में बात निकालकर मतलब की भुला देते हो। अब आप लोग तो बात ही करने की खाते हो लेकिन हमें तो हाथ तोड़ मेहनत करनी होती है।"

"अबे, तू कुछ बोलेगा भी।"

"लीजिये, तो क्या मैं इतनी देर से चुप खड़ा था। मैं तो बोल ही रहा था लेकिन मेरी समझ में ये नहीं आता कि आप लोगों ने मुझे बुलाया क्यों था।"

"बुलाया क्यों था? अबे, हमने कब बुलाया था? तू तो खुद ही आया था।"

"तो क्या मैं पागल हूँ जो बिना बुलाये चला आया। मतलब ये कि मुझे बुलाकर आप खुद ही भूल गये हो कि क्यों बुलाया था और मुझे बेवकूफ बना दिया।

"अब हम तुझे क्या बनायेंगे। तू तो बना बनाया है।"

"ये बात भी ठीक है। एक चाय तक तो आप बना नहीं सकते। लेकिन मेरी समझ में ये बात नहीं आती कि जब आप इतनी जल्दी भूल जाते हैं तो दफ्तर में काम कैसे चलता होगा।"

"अबे हम कुछ नहीं भूले। हमने तुझे नहीं बुलाया था।' राज नारायण ने कहा। "मैं कब कहता हूँ कि आपने बुलाया था। मैं कोई भूल थोड़ी गया हूँ कि मुझे बड़े बाबू ने बुलाया था।"

"अरे, मैंने तुझे नहीं बुलाया।" सुरेश चंद्र बोले।

"क्या बात करते हैं ? नेता लोग भी महीना डेढ़ महीना अपनी बात पर कायम रहते हैं। आपने तो उन्हे भी मात कर दिया।"

"ठीक है–ठीक है, तू जा।"

"ठीक तो नहीं है बाबू, बाकी मैं चला जाता हूँ अगर आपका आदेश हो तो। लेकिन मुझे जाना कहां है ?"

"जहां तू जा रहा था।"

"मैं कहां जा रहा था? मैं तो यहीं आ रहा था। आपने आवाज देकर बुलाया था।"

"अरे बाबा कहा तो मैंने नहीं बुलाया था।"

"कैसी बात करते हो मैं कुछ भूल थोड़ी गया। आपने मुझे आवाज दी। मैं आया। आप मुझसे जनरल नॉलेज के सवाल पूछने लगे।"

"जनरल नॉलेज के सवाल ? अबे तू पागल तो नहीं हो गया।"

"लो जी अब पागल हो गया। बाकी जो भी आपके साथ रहेगा आखिर में पागल हो ही जायेगा। अब ये भी भूल गये।"

"अबे, अब क्या भूल गये ?"

"यही कि जनरल नॉलेज के सवाल पूछते रहे।"

"तुमसे क्या जनरल नॉलेज के सवाल पूछ रहे थे?

"अब हम थोड़ी ही भूल गए। आपकी तरह हम भी भूल जाया करें तो चल गया काम।"

"अब कुछ बताएगा या यों ही चबड़–चबड़ करेगा।"

"अब ये भी भूल गए न। मैं पहले ही जानता था।'

"अब क्या भूल गये?" सुरेश चंद्र लगभग चीख पड़े।

"वही सवालों के जवाब।" राम आसरे एक आंख दबा कर बोला।"

"कौन से सवालों के जवाब ?"

"जनरल नॉलेज के सवालों के जवाब और कौन से ?"

"अच्छा बताइये वो जवाब।" सुरेश चंद्र बोले।

"आप सवाल पूछिए।"

"क्या सवाल पूछूँ ?"

"वाह बड़े बाबू। मान गया आपको। आपका भी जवाब नहीं। यानि कि सवाल भी भूल गये।"

सुरेश चंद्र ने खा जाने वाली नजरों से राम आसरे को देखा लेकिन राम आसरे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपनी धुन में कहे जा रहा था, "ठीक है, हमें क्या, बाकी जभी में कहूँ दिनो दिन सरकार का बाजा क्यों बज रहा है। जब आप जैसे बड़े बाबू होंगे तो और क्या होगा ?

अबे, तू क्या कह रहा है"?

"कुछ नहीं बड़े बाबू, मैं तो देश की किस्मत को रो रहा हूँ। बाकी आपका भी जवाब नहीं है। मैं कहता हूँ एक कागज पर आप जवाब लिख लो तो ठीक रहे वरना आप फिर भूल जाओगे।"

"क्या लिख लूँ ?"

"यही कि उल्लू कहां रहता है? गधा कहां रहता है? हां लेकिन ये तो मैं भी नहीं जानता कि बेवकूफ दिमाग क्यों चाटता है ?"

"अबे ये कौन नहीं जानता कि उल्लू कहां रहता है और गधा कहां रहता है।"

"तो फिर मुझसे क्यों पूछा था ?"

"मैंने तुझसे ये कब पूछा था?"

"लो अब बात करो। बाबू जी जब आपकी पुकार पर मैं हाजिर हुआ था तो सबसे पहला सवाल यही तो पूछा था–उल्लू कहां रहता है?"

"अबे, ये सवाल थोड़ी था।"

"चलो मान लिया सवाल नहीं था" राम आसरे होशियारी से बोला। "दो सवालों का जवाब तो मैंने दे दिया था। अब उसे आप सवाल थोड़ी मानेंगे। मैं मान जाऊ अगर तीसरे का जवाब आप दे दो।"

"तीसरे का जवाब ?"

"हाँ, तीसरे का जवाब।"

"क्या तीसरे का जवाब।"

"यही कि बेवकूफ दिमाग क्यों चाटता है?"

चल खुसरो घर आपने

महेन्द्र शर्मा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रजनीश जी ने पोते को उतारा और उसका बैग उसकी पीठ पर लगा दिया।

''बॉय'' उन्होने मुस्कुराकर पोते की ओर हाथ हिलाया।

''बॉय दादू'' अनिंद्य ने मुस्कुराकर कहा और अंदर दौड़ गया। रजनीश ने एक गहरी साँस भरी और साइकिल पर सवार होकर वापस लौटे।

साइकिल गेट के अंदर लगाकर देखा तो बेटा लॉन में कुर्सी पर बैठा अखबार पढ़ रहा था और बीच–बीच में चाय की चुस्की ले रहा था।

''बाऊजी जरा जल्दी कीजिए बरामदे में आती बहू ने कहा'', वरना गैस मिलने में दिक्कत हो जायेगी।'' ''अच्छा'' कह कर वे अंदर गये। पत्नी रूकमिणी के सहयोग से खाली सिलेण्डर लाकर साइकिल पर कैरियर पर लगाया और उसे टूयूब से कस दिया और 10 किमी दूर गैस गोदाम की ओर चल पड़े।

जब तक दो बजे वे वापस लौटे तब तक पोते को लाने का समय हो गया था। ''दो कौर पेट में डाल लो'' रूकमिणी ने कहा ''सुबह से भूखे हो।''

''लेकिन देर हो जायेगी फिर खाकर तुरंत साइकिल भी तो नहीं चलती। राजू को ले ही आता हूँ।''

एक टुकड़ा गुड़ खाकर और एक गिलास पानी पी कर रजनीश पोते को लाने चले गये।

पोते को लाकर तीन बजे उन्हें खाना नसीब हुआ।

खाना खाकर कोई आधा घण्टा आराम करके वे फिर साइकिल उठाकर सब्जी लेने चले गये। रूकमिणी भी उठकर किचन में शाम की तैयारी में व्यस्त हो गयी।

दोनो पति–पत्नी की दिनचर्या प्रातः पाँच बजे से रात्रि ग्यारह बजे तक ऐसे ही चलती थी। बेटा और बहू दोनों नौकरी करते थे। सप्ताह में पंद्रह दिन तो वे शाम को लौटकर पार्टी वगैरह में चले जाते थे। वरना फिर चाय पीकर टीवी वगैरह देखते और खाना खाकर सो जाते। इतने पर भी बेटे–बहू के मिजाज टेढ़े ही रहते थे। उन्हे समझ में नहीं आता था कि अनवरत इतनी मेहनत करने पर भी बेटे–बहू को उनसे शिकायत क्या है? उस दिन अनिंद्य को स्कूल पहुँचा कर रजनीश घर लौटे तो अपने बचपन के सहपाठी आशुतोष को आया पाकर प्रफुल्ल हो उठे।

दोनों अभी चाय पी ही रहे थे कि बहू ने आकर कहा ''बाऊजी, बिजली के बिल की लॉस्ट डेट है। भूल न जाना। बिल व चेक टेबल पर रखा हैं।''

रजनीश किलस गये। पिछले हफ्ते ही उन्होंने याद दिलाया था कि लॉस्ट डेट पर भीड़ बहुत हो जाती है। अब क्या करें? लिहाजा आशुतोष को नहा धोकर आराम करने को कह कर वे निकल पड़े। बिल जमा करते करते दो बज गये। वहीं से वे सीधे अनिंद्य के स्कूल चले गये। तीन बजे लौटे तो आशुतोष उनका खाने पर इंतजार कर रहे थे। खाना खाकर वे बाते करने लगे। सब्जी वे लेते आये थे सो पांच बजे तक का समय फ्री मिल गया था। अगले रोज भी अनिंद्य के स्कूल की फीस बैंक में जमा करनी थी और टेलीफोन का बिल जमा करना था। सो उस दिन भी तीन बजे।

''यार, तू तो घन चक्कर बना हुआ है।'' आशुतोष खाना खाते हुये बोला, ''और तुझसे भी ज्यादा तो भाभी की दुर्दशा है। तुम घर के मालिक हो या नौकर?''

''यार बैठे–बैठे भी क्या करेंगे। इस तरह दिन आराम से बीत जाते है।'' ''तू बेवकूफ है और तेरे बेटे ने तेरी बेवकूफी का फायदा उठाना ही है। अबे, भाभी की उम्र अब किचन में खटने की है?''

रजनीश मौन रहे।

''क्या बात है?'' आशुतोष ने कुरेदा।

"यार, रिटायरमैंट पर मिले सारे रूपयों और आधी पेंशन बेचकर ये मकान बना दिया अब कुल तीन हजार पेंशन से क्या गुजारा होता?'

"तो इतने बड़े घर को किराये पर दे दे। एक पोर्शन से ही चार–पांच हजार से ऊपर मिल जायेंगे।"

रजनीश हंसे।

"मकान पर तो बेटे का कब्जा है। बहुत मुश्किल से एक कमरे में गुजारा कर रहा हूँ।"

कुछ देर दोनों मौन खाना खाते रहे फिर आशुतोष बोला "देख भाई कुछ कर इस समय तेरी रूटीन तो यूँ होनी चाहिये थी कि सुबह को दोनो सैर को जाते, लौट कर नाश्ता करते फिर आराम से घर के काम–काज करते दोपहर में खाना खाकर आराम करते। शाम को चाय पी कर टहलने निकलते।

"सोचा तो ऐसा ही था लेकिन........."रजनीश ने आह भरी।

"लेकिन–वेकिन कुछ नहीं। बेटे से बात करो, कहो बेटे को स्कूल लाना छोड़ना है तो स्कूटर ले कर दो। गैस की होम डिलीवरी होती है। घर के काम–काज के लिये नौकरानी रखें।"

आशुतोष तो चले गये लेकिन रजनीश के दिमाग में असंतोष धनीभूत हो उठा। उन्हें स्पष्ट दिखने लगा कि वो दोनों तो नौकरों से भी बदतर जीवन जी रहे थे। मानो बंधुआ मजदूर हैं। अंततः उन्होने बेटे से बात की।

"बेटा, तुम्हारी माँ से किचन का काम अब होता नहीं। ऐसा करो कि एक नौकरानी रख लो।"

"क्यों? ऐसा कौन सा काम है? बेटे से पहले बहू बोली, "हम लोग तो ज्यादातर बाहर ही खाते हैं। आप दोनों अकेले रहते तो खाना न बनाते ?"

"बेटे, वो उसकी कई परेशानियां हैं। बीमार है।"

"बेकार के बहाने हैं।"

"बहाने हैं तो बहाने हैं। नहीं होता हमसे ये सब काम।" वे भी भड़क गये।

"ऐसा कौन सा काम है जो नहीं होता। एक बच्चे को स्कूल छोड़ना लाना ही बहुत बडा काम है?"

"हाँ, नहीं होता। अपना इंतजाम कर लो।"

"ठीक है कर लेंगे। बहू ने जोर से कहा, "आप भी अपना इंतजाम कर लो।"

"क्या?" वे हैरत से बोले ।

"हाँ, मैं किसी का रौब नहीं सह सकती। अपना कमाती हूँ। अपना खाती हूँ।"

उस दिन से किचन अलग हो गया। एक तरह से रजनीश अपने ही घर से बेदखल हो गये। बेटे–बहू की बदतमीजियां भी बढ़ती चली गई। तीन हजार की पेंशन में रजनीश का गुजारा होना मुश्किल था ऊपर से उसे अपनी और पत्नी की दवायें भी लेनी होती थी जो कि हजार से ऊपर बैठती थी। इसी बीच रजनीश को दिल का दौरा पड़ गया। सरकारी हस्पताल में भी खर्च करीब सत्तर हजार पड़ा जिससे रूकमिणी के जेवर तो बिके ही बिके, कुछ दोस्तों से उधार भी लेना पड़ा।

बेटे–बहू को तो कोई मतलब था नहीं। घर लौटे तो दवाइयों का खर्च तो बढ़ा ही बढ़ा करीब चालीस हजार का कर्जा भी सिर पर चढ़ा हुआ था। कुछ चलने फिरने लायक हुये तो रजनीश एक दिन उसी शहर में अपने दोस्त गोपालदास के पास पहुँचे।

"हाँ, इसका तो एक ही चारा है या तो अपने बेटे से कहो कि वह तुम्हें पांच हजार रूपया महीना दे या मकान खाली कर दें।" गोपालदास सारी बात सुनने के उपरांत बोले।

"ये दोनों बातें नहीं हो सकती। न वो मकान खाली करेगा और न ही पैसे देगा।

"फिर तो उस पर बेदखली का मुकदमा कर दो।

मुकदमे में तो सालो लग जायेगे और पैसा भी खर्च होगा। यहाँ तो फूटी–कौड़ी नहीं है।

"तो फिर तुम नौकरी कर लो।"

"मुझे कौन नौकरी देगा?"

"मेरा एक परिचित है। उसके पास एकाउण्ट का काम है। पिछले एकाउण्टेट को ढाई हजार देता था। तुम्हें तीन दे देगा।

"मुझे दिलवा दो।"

इस प्रकार रजनीश काम करने लगे तो आर्थिक सहारा बना। दोनों की दिनचर्या बदली और स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ।

लेकिन अब रजनीश को एक नई चिंता लगी–अगर उसे कुछ हो गया तो रूकमिणी का क्या होगा। लेकिन कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। इसी बीच उनके बेटे की साली की शादी तय हो गई और वे लोग एक महीने की छुट्टी लेकर बैंगलौर चले गये।

सेठ धर्मपाल रजनीश को उगाही के लिये आस–पास के छोटे शहरों में भेजते रहते थे। वे उस दोपहर को ग्राहक की दुकान पर पहुँचे तो वह किसी व्यक्ति के साथ एक प्रोपर्टी देखने जा रहा था। बोला– "आप बैठे–बैठे क्या करेगें। जब तक ड्रॉफ्ट बन कर आता है आप हमारे साथ चलें इतने में मुंशीजी नया आर्डर भी तैयार कर देंगे।" वे साथ में हो लिये।

प्रापर्टी सेठ को पसंद न आई। लेकिन रजनीश के मन भा गई। कुल आठ बीघे खेत थे और एक छोटा सा पुराना मकान था कुल दस लाख की मांग थी। वे वापस लौटे तो एक ख्याल उनके दिमाग में चुलबुला रहा था।

पहले तो पत्नी तैयार न हुई लेकिन उनके इसरार करने पर तैयार हो गई। उन्होंने अपने सेठ से बात की। उसने मकान देखा तो उसे पसंद आ गया और उसने 22 लाख मूल्य लगाया। अंत मे 24 लाख पर तय हो गया। रजनीश ने मजदूर लगाकर बेटे–बहू का सारा सामान गैरेज में भरवा दिया उसकी एक लिस्ट बनाकर सेठ जी को सौंप दी तथा ताला लगा कर सील कर दिया। स्वयं वे उस पुराने मकान में शिट हो गये। ढ़ाई लाख खर्च करके उन्होने उस मकान का पुर्ननिर्माण कराया। क्योंकि मोल भाव करके वह आठ में मिल गया था सो रजनीश जी को 13 लाख की बचत हुई जिसे उन्होंने 9 प्रतिशत ब्याज पर फिक्स कर दिया जिसकी त्रैमासिक ब्याज का भुगतान उन्हें मिलना था। इस प्रकार उन्हे सात हजार से ऊपर मासिक की आय हो गई जिसमें उनकी पेंशन के तीन हजार शामिल नहीं थे। उन्होंने नौकरी छोड़ दी तथा खेती करने लगे। गाय पाल ली और अपनी मर्जी के आनंदमय जीवन में व्यस्त हो गये।

बेटे–बहू जब बैंगलौर से लौटे तो उनके हाथों के तोते उड़ गये। तीन दिन होटल में ठहर कर एक थ्री रूम सेट किराये पर लिया जिसका किराया बिजली पानी छोड़कर आठ हजार था। उन्होने बैंक जा कर पता करने की कोशिश की किंतु अपने माता–पिता का पता न पा सके।

(सभी नाम व पात्र काल्पनिक हैं परंतु कहानी सत्य घटना पर आधारित है।)

पीनस में गुज़रते हैं जो कूचे से वह मेरे
कन्धा भी कहारों को बदलने नहीं देते

–गालिब'

रंग बिरंगी धरती

डॉ.उत्तर कुमार तोमर
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

इस रंग बिरंगी दुनिया में
हैं रंग बिरंगे लोग यहां
सुंदर लगती इन लोगों से
है ऐसी धरती और कहां

कुछ गोरे हैं कुछ काले हैं
कुछ श्याम सलोने लोग यहां
कुछ रंगीं हैं कुछ बेरंगीं
कुछ रंग बदलते लोग यहां

कुछ के रंग निराले हैं
गोरे होकर भी काले हैं
कुछ भोले–भाले रहते हैं
काले होकर भी लोग यहां

कुछ हरे और कुछ हारे हैं
किस्मत के मारे लोग यहां
कुछ पीले है कुछ ढीले हैं
नीले जहरीले लोग यहां

कुछ चुप रहते बस सुनते हैं
कुछ बजा रहे बस गाल यहां
कुछ बात–बात पर हो जाते
हैं नीले पीले लाल यहां

कुछ ज्ञानी हैं कुछ अज्ञानी
कुछ बिना वजह ही अभिमानी
गलती तो सब ही करते हैं
कुछ जानबूझ कर नादानी

बातें वो सब बेमानी
जो नहीं दिलों पर असर करें
शब्द वही तो सार्थक हैं
जो वाणी को अमर करें

नरक वही तो होता है
नफरत रहती हर वक्त जहां
निःस्वार्थ बनो, फिर देखो तो
स्वर्ग यहीं है, और कहां !

ऑक की कहानी : अपनी जुबानी

अनिल शर्मा
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

ऑक यानि *केलोट्रोपिस प्रोसेरा*
जैसलमेर में मैंने देखा
इसकी लकड़ी से बनता
कठपुतली का चेहरा।

पुराने लोग यह हैं कहते
इसके फूल में शिव–पार्वती रहते
मैंने जब फूल के पुंज हटाए
शिव–पार्वती बैठे पाए।

इसके जड़, पत्ती, फल, फूल, बीज
सभी हैं बड़े काम की चीज
बहुत सी है ऐसी बीमारी
जो इनके सेवन से हारी।

आज भी जब फोड़े हो जाते
गर्म पत्तों का उपयोग करते
इसके रसायन सूजन ही नहीं
बल्कि दर्द भी हैं मिटाते
फोड़े इससें जल्दी पक कर
स्वयं ही ठीक हो जाते

जब हो जाता है कोढ़, मलेरिया या ज्वर
इसका दूध दिखाता है असर
जो इसका दूध सिर पर लगाता
उसका गंजापन दूर हो जाता
इसके फूलो का अर्क
खाँसी और दमा भगाता ।

मानव भी एक कठपुतली है।
डोर जिसकी ईश्वर के पास है।
ऑक शिव जी के लिए ही नही
हमारे लिए भी खास है।

सांझ जब रवि ने कहा
दायित्व लेगा कौन?

प्रश्न सुनकर रह गया
जग निरुत्तर मौन।

एक दीये ने कहा तब
जोड़ दोनों हाथ,

मैं करूँगा जितना मुझसे
बन पड़ेगा नाथ।

— गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर

पद्यानुवाद रमाकान्त मिश्र द्वारा, सादर !

लेखक परिचय

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून			
डॉ. रवीन्द्र कुमार उप महानिदेशक विस्तार निदेशालय		**सर्वेश सिंघल** सहायक महानिदेशक मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय	
डॉ. ओम कुमार वैज्ञानिक–डी बी.सी.सी. प्रभाग		**डॉ. आर. एस. रावत** अनुसंधान अधिकारी बी.सी.सी. प्रभाग	
रमाकान्त मिश्र अनुसंधान अधिकारी मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय		**श्रीमती सीमा ठाकुर** निजी सचिव प्रशासन निदेशालय	
श्रीमती गीता वोहरा निजी सचिव मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय		**श्रीमती विजय धस्माना** स्थापना एवं लेखा अधिकारी प्रशासन निदेशालय	
अनूप चौहान अनुसंधान सहायक–प्रथम सांख्यिकी प्रभाग, विस्तार निदेशालय		**छत्रपाल सिंह सैनी** उच्च श्रेणी लिपिक प्रशासन निदेशालय	

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून			
डॉ. आर. के. ठाकुर वैज्ञानिक–एफ एवं प्रमुख वन कीट विज्ञान प्रभाग		**आर. एस. भण्डारी** वैज्ञानिक–एफ एवं प्रमुख (सेवानिवृत) वन कीट विज्ञान प्रभाग	
पी.के. गुप्ता वैज्ञानिक–डी वन विस्तार प्रभाग		**डॉ. हर्षर्द्धन वशिष्ठ** वैज्ञानिक – डी वन पारिस्थिकी एवं पर्यावरण प्रभाग	
डॉ. चरन सिंह वैज्ञानिक–बी वन विस्तार प्रभाग		**डॉ. के. पी. सिंह** वैज्ञानिक–बी वन कीट विज्ञान प्रभाग	
विजय धवन अनुसंधान अधिकारी संवर्धन प्रभाग		**अजय गुलाटी** अनुसंधान सहायक–प्रथम वन विस्तार प्रभाग	
महेन्द्र शर्मा उच्च श्रेणी लिपिक भवन अनुभाग		**विवेक त्यागी** शोध छात्र वन कीट विज्ञान प्रभाग	
सचिन कुमार शोध छात्र वन कीट विज्ञान प्रभाग			

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
सामाजिक वानिकी तथा पारि-पुनर्स्थापन केन्द्र, इलाहाबाद			
ए. के. पांडे प्रमुख		**अनुभा श्रीवास्तव** अनुसंधान अधिकारी	
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर			
डॉ. रंजना आर्या वैज्ञानिक–ई एवं प्रभागाध्यक्ष अकाष्ठ वनोपज प्रभाग		**डॉ. के. के. श्रीवास्तव** वैज्ञानिक–ई वन संरक्षण प्रभाग	
डॉ. उत्तर कुमार तोमर वैज्ञानिक–ई वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन प्रभाग		**डॉ. आभा रानी** वैज्ञानिक–डी वन पारिस्थतिकी प्रभाग	
डॉ. संगीता सिंह वैज्ञानिक–सी वन संरक्षण प्रभाग		**डॉ. नीलम वर्मा** अनुसंधान अधिकारी वन संरक्षण प्रभाग	
श्रीमती संगीता त्रिपाठी अनुसंधान अधिकारी अकाष्ठ वनोपज प्रभाग		**डॉ. नवीन कुमार बोहरा** अनुसंधान अधिकारी वन संवर्द्धन प्रभाग	
अनुराधा भाटी पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकालय अनुभाग		**एस. एल. मीणा** अनुसंधान सहायक– प्रथम वन संवर्द्धन प्रभाग	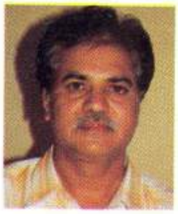

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
राजेश गुप्ता अनुसंधान सहायक– प्रथम अकाष्ठ वनोपज प्रभाग		**अमीन उल्लाह खान** अनुसंधान सहायक–द्वितीय वन पारिस्थितिकी प्रभाग	
अनिल शर्मा तकनीकी सहायक वन पारिस्थितिकी प्रभाग		**विनीता श्रीवास्तव** अनुसंधान शोधार्थी वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन प्रभाग	
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर			
असीम कुमार मण्डल निदेशक		**अशोक कुमार पाण्डेय** वैज्ञानिक–ई एवं प्रमुख अकाष्ठ वनो उपज प्रभाग	
अविनाश जैन वैज्ञानिकी–डी पारिस्थितिकी एवं पुनर्स्थापन प्रभाग		**कैलाश चन्द गुप्ता** हिन्दी अधिकारी	
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर			
एस. सी जोशी निदेशक		**डॉ. एस. के. शर्मा** वैज्ञानिक–एफ एवं राजभाषा अधिकारी	

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के हैं और उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् और उसके संस्थानों की नीति, कार्य या विचार को न तो प्रतिबिम्बित करती है और न ही उसका प्रतिनिधित्व करती है। प्रकाशन का उद्देश्य राजभाषा का प्रसार व परिषद् तथा संस्थानों के कर्मियों की सृजनशीलता को बढ़ावा देना है।

"जिसको न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है"
– राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

प्रकाशित
मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग, विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
डाकघर-न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248 006
भारत